ISSN-0970-6518

स्वर्ण-जयंती वर्ष

1 फरवरी 2019 - 1 फरवरी 2020

हरियाणा खेती

वर्ष 53 अंक 2

वार्षिक चंदा ₹ 150 फरवरी 2020 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग

विस्तार शिक्षा निदेशालय

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 53 | फरवरी 2020 | अंक 2

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
गेहूं के प्रमुख रोग व बचाव	राजेन्द्र सिंह एवं एस. एस. कड़वासरा	1
क्षारीय भूमि में वृक्षारोपण	एम. के. सिंह, बिमलेंद्र कुमारी एवं संजय कुमार	2
बीज उपचार के लाभ	राजेश कथवाल, विक्रम सिंह एवं के. डी. शर्मा	3
समन्वित कृषि प्रणाली : सीमांत किसानों के लिए वरदान	उमा देवी, पवन कुमार एवं धीरज पंघाल	4
बेर के कीट व उनकी रोकथाम	रामकरण गौड़, एस. पी. यादव एवं सुशील शर्मा	5
आम के रोग व नियन्त्रण	राजेंद्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण	6
ढींगरी मशरूम उगाने की विधि	राकेश कुमार चुघ, सतीश कुमार एवं सूबेसिंह	7
अश्वगंधा का औषधीय महत्व	सुषमा बिष्ट, एच. के. यादव एवं धर्मेंद्र सिंह	8
जल संरक्षण का महत्व	मुकेश कुमार जाट, प्रमोद कुमार यादव एवं रामस्वरूप दादरवाल	9
अर्जुन छाल : स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्व	मीनू सिरोही, वीनू सांगवान एवं छवि सिरोही	10
हरे चारे के रूप में वृक्षों का महत्वपूर्ण योगदान	करिश्मा नंदा, संदीप आर्य एवं सतपाल	11
सहजन : पोषण से भरपूर चारे का एक विकल्प	मिनाक्षी जाटाण, संदीप कुमार एवं नवीन कुमार	18
स्वच्छ भारत मिशन में : गृहिणी का योगदान	आसमां, मंजु दहिया एवं सूबेसिंह	19
पराली से बायोगैस का उत्पादन : एक प्रबल संभावित तकनीक	यादविका, कमला मलिक एवं वाई. के. यादव	19
गन्ने की कटाई के उपरांत – ह्रास	कनिका पंवार एवं रमेश कुमार	21
ऊनी कपड़ों की देखभाल : कैसे करें	ज़ेबा जमाल एवं दिव्या सचान	21
पराली की समस्या एवं निपटने की नयी पहल	संजय, डी. पी. मलिक एवं स्वामी एच. एम.	22
खाली समय में थ्रैशर का रखरखाव	प्रमोद शर्मा, कनिष्क वर्मा एवं नरेंदर	23
टीम वर्क (सामूहिक कार्य) का महत्व	विजयपाल सिंह यादव, सूबेसिंह एवं आर .एस. हुड्डा	24
प्याज़ और लहसुन फसलों में एकीकृत पोषक प्रबंधन	विजय कुमार, कनिका पंवार एवं सोनू कुमार	25
फसल एवं घरेलू जैव अवशेष प्रबंधन : मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए आवश्यक	नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं मनोज कुमार शर्मा	26
Agro-forestry : Approach for Sustainable Production	A. K. Deswal, R. B. Gupta and J. N. Yadav	29
Molya – The Lesser known Disease of Wheat in Haryana	R. S. Kanwar	29
Soil Health and Nutrient Management	Narender, Abir Dey and Manoj Kumar Sharma	30

स्थाई स्तम्भ : मार्च मास के कृषि कार्य 13

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

संपादक (अंग्रेज़ी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

गेहूं के प्रमुख रोग व बचाव

राजेन्द्र सिंह एवं एस. एस. कड़वासरा
पादप रोग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गेहूं हरियाणा की प्रमुख रबी फसल है। इसकी अधिक पैदावार के लिए उत्तम बीज, सन्तुलित खाद, पानी व उचित रख रखाव आवश्यक है। बढ़ते हुए पौधों पर अनेक विकार व रोग आते हैं। प्रदेश में गेहूं के प्रमुख रोगों के लक्षण व उनसे बचाव इस प्रकार हैं :

भूरा व पत्तों का रतुआ : इस रोग से पत्तों पर भूरे रंग के फफोले बिखरे मिलते हैं। ये लक्षण फरवरी के आखिरी पखवाड़े या मार्च के शुरू में दिखाई देने लगते हैं। यह रोग फसल की बढ़वार के साथ बढ़ता जाता है। अधिक प्रकोप से दाने हल्के व सिकुड़ जाते हैं। जिससे पैदावार पर बुरा असर पड़ता है।

बचाव :

रोग रोधी जैसे डब्ल्यू एच 283, डब्ल्यू एच 1105, डब्ल्यू एच 542, एच डी 2967, डी पी डब्ल्यू 621-50, डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 912, डब्ल्यू एच डी 943, डब्ल्यू एच डी 948 व राज 3765 की काश्त करें।

मैनकोज़ेब (इन्डोफिल एम-45) या जीनेब (डाईथेन ज़ैड-78) का 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टयर की दर से छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देते ही करें तथा आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिन के अंतराल पर 2-3 छिड़काव और करें।

पीला या धारीदार रतुआ : इस रोग में फफोले कतारों के रूप में दिखाई देते हैं व उनका रंग पीला होता है। अधिक प्रकोप से तने व बालियां भी रोगग्रस्त हो जाती हैं। फफोले आपस में मिलकर पीले रंग की धारियां पत्तों व बालियों पर भी बनाते हैं। यह रोग जनवरी के आखिरी सप्ताह में दिखाई देने लगता है जब औसत तापमान 11-15 डिग्री सैं. व नमी अधिक होती है। ठंडे मौसम में यह रोग पौधे की वृद्धि के साथ बढ़ता जाता है। इस रोग में भी कमज़ोर दाने बनते हैं।

बचाव :

रोग रोधी किस्मों जैसे डब्ल्यू एच 283, डब्ल्यू एच 1105, डब्ल्यू एच 542, एच डी 2967, डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 912, डब्ल्यू एच डी 943, डब्ल्यू एच डी 948 व राज 3765 की बिजाई करें।

मैनकोज़ैब (इन्डोफिल एम-45) या डाईथेन ज़ैड 78 का 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बीमारी दिखाई देते ही छिड़काव करें।

टिल्ट (प्रोपेकोनाज़ोल) का 0.1 प्रतिशत की दर से लक्षण दिखाई देते ही छिड़काव करें।

चूर्ण रोग (पाऊडरी मिल्ड्यू) : पत्तियों पर सफेद या मटमैले रंग के पाऊडर का बनना व इसका पत्तों पर बिखरा हुआ होना मुख्य लक्षण है। यह रोग नीचे वाली पत्तियों से ऊपर वाली पत्तियों की तरफ बढ़ता जाता है। अधिक प्रकोप से पत्तियां सूख जाती हैं और रोगग्रस्त बालियों के दाने हल्के व सिकुड़े हुए होते हैं। यह रोग नमी व सिंचित क्षेत्रों (करनाल, अम्बाला, यमुना नगर, कैथल व कुरूक्षेत्र) में अधिक होता है।

बचाव :

डब्ल्यू एच 283, डब्ल्यू एच 542, डब्ल्यू एच 896 व डब्ल्यू एच 912 किस्मों में इस रोग का प्रकोप कम होता है।

समय पर सिफारिश की गई किस्मों की पछेती बिजाई न करें।

रोग को रोकने के लिए घुलनशील गंधक व छिड़काव 2-2.5 किलोग्राम 400-500 लीटर पानी में प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

खुली कांगियारी : यह रोग प्रदेश के सभी भागों व किस्मों में पाया जाता है। यह बाली अवस्था का रोग है व रोगी बालियों में दानों की जगह काला चूर्ण बन जाता है जो कि इस रोग के बीजाणु हैं और हवा द्वारा रोगी बालियों से उड़ कर स्वस्थ बालियों में बन रहे दानों में पहुंच कर उन्हें रोगग्रस्त कर देता है। अन्त में बीजाणु के रेशे (माईशिलियम) दानों के अन्दर स्थापित हो जाते हैं और ऐसे दाने ऊपर से स्वस्थ दिखाई देते हैं लेकिन अगले वर्ष जब ऐसे दानों को बीज के रूप में खेत में बोया जाता है तो यह रोग दोबारा बालियों के बनते समय दिखाई देता है। अक्सर रोगी पौधों में काले रंग की बालियां निकलने से 3-4 दिन पूर्व (गोभ अवस्था) सबसे ऊपरी पत्ती (झण्डा पत्ती/फ्लैग लीफ) पीली पड़नी अथवा सूखनी शुरू हो जाती है। झंडा पत्ती का पीलापन अथवा सूखना हमेशा ऊपर से शुरू होकर नीचे की तरफ बढ़ता है। ऐसे पौधों को खेत में आसानी से रोगी बालियां निकलने से पहले पहचान कर खेत से निकालकर नष्ट किया जा सकता है।

बचाव :

हमेशा प्रमाणित बीज या रोग रहित बीज का प्रयोग करें।

इस रोग का एक मात्र कारण रोगी बीज है इसलिए बिजाई से पहले बीज को कार्बोक्सिन (वीटावैक्स) या बाविस्टिन नामक दवा 2 ग्राम से या रेक्सिल एक ग्राम प्रति किलो बीज की दर से सूखा उपचार करें।

यदि मई-जून के महीने में बीज का सौर ताप उपचार किया जाता है तो फिर किसी अन्य उपचार की आवश्यकता नहीं।

खुली कांगियारी से ग्रसित गेहूं की बालियां निर्धारित समय से एक या दो दिन पहले बूट/गोभ से बाहर निकलती हैं तथा जैसे ही यह अवस्था दिखाई दे रोगी पौधों/बालियों को उखाड़कर जला दें या मिट्टी में दबा दें ताकि इस रोग के बीजाणुओं को हवा द्वारा आगे फैलने से रोक सकें।

कठिया गेहूं की किस्म डब्ल्यू एच 896 व डब्ल्यू एच 912 रोग रोधी है।

पत्तों की कांगियारी : प्रदेश के शुष्क ज़िलों व कुछ किस्मों जैसे सी 306 डब्ल्यू एच 147, डब्ल्यू एच 542, पी बी डब्ल्यू 343 में यह रोग अधिक पाया जाता है। रोगी पौधे प्राय: बौने रह जाते हैं। पत्तियों पर नसों के साथ-साथ काले रंग की लम्बी व चमकीली धारियां बन जाती हैं। शुरू में ये धारियां पत्ती की झिल्ली द्वारा ढकी रहती हैं। इनके बाद में फट जाने से काले रंग का चूर्ण इधर-उधर बिखरता रहता है जो कि बीज के ऊपर या खेत में अगले वर्ष इस रोग का कारण बनता है। रोगी पौधों में पत्तियां टेढ़ी-मेढ़ी या मुड़ जाती हैं और प्राय: बालियां नहीं बनतीं और अगर बन भी जाएं तो दाने हल्के, सिकुड़े व कमज़ोर होते हैं तथा अंकुरण बहुत कम होता है।

बचाव :

खुली कांगीयारी वाली दवाओं जैसे रेक्सिल एक ग्राम या कार्बोक्सिन (वीटावैक्स) या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचार करें।

रोगग्रस्त खेतों में रोग रोधी किस्मों जैसे डब्ल्यू एच 283, डब्ल्यू एच 896 व डब्ल्यू एच 912 की काश्त करें।

रोगग्रस्त खेतों में रोगरोधी किस्मों जैसे डब्ल्यू एच 283, डब्ल्यू एच 896 व डब्ल्यू एच 912 की काश्त करें।

रोगग्राही खेतों में सी 306, डब्ल्यू एच 147, डब्ल्यू एच 542 व पी बी डब्ल्यू 343 को न बोएं।

गेहूं की फसल काटने के बाद रोगी खेत में से फसल की जड़ें व झुण्डी आदि इकट्ठा करके जला दें क्योंकि इस रोग के बीजाणु कई सालों तक ज़मीन में जिन्दा रह सकते हैं। अगर हो सके तो रोगी खेतों में कम से कम 2-3 साल तक गेहूं न बोएं।

रोगी खेतों की मई जून के महीने में गहरी जुताई करने से रोग के बीजाणु काफी हद तक कम हो जाते हैं।

करनाल बंट : यह रोग प्राय: प्रदेश के नमी वाले क्षेत्रों जैसे करनाल, अम्बाला, कुरूक्षेत्र, यमुनानगर, पानीपत, कैथल, फरीदाबाद ज़िलों में अधिक पाया जाता है। खड़ी फसल में यह रोग दिखाई नहीं देता और गेहूं निकालने के बाद ही रोगी दाने दिखाई देते हैं जिनका अंदरूनी भाग आंशिक रूप से व कभी-कभी पूर्ण रूप से काले चूर्ण में बदल जाता है व उनसे सड़ी हुई मछली जैसी दुर्गन्ध आती है। रोगी दाने फसल की कढ़ाई के समय फूट जाते हैं और इनसे बीजाणु निकलकर बीज की सतह से चिपक जाते हैं व स्वस्थ बीज में भी मिल जाते हैं। जो अगले मौसम में बीमारी फैलाने का कारण बनते हैं।

बचाव :

रोग रोधी किस्मों जैसे डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 912 व पी बी डब्ल्यू 502 की काश्त करें।

बीज जनित रोग की रोकथाम के लिए बिजाई से पहले बीज का एक ग्राम रेक्सिल या दो ग्राम थाईरम नामक दवा से प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें। प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।

अगर सम्भव हो तो बीमारी वाले क्षेत्रों में कुछ वर्ष तक गेहूं की जगह गन्ने की काश्त करें।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

क्षारीय भूमि में वृक्षारोपण

एम. के. सिंह, बिमलेंद्र कुमारी[1] एवं संजय कुमार[2]
कृषि अर्थशास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

देश की बढती हुई जनसंख्या की पोषण समस्या भारतीय कृषि के लिए एक बहुत बडी चुनौती है। इसलिए क्षारीय भूमि को सुधार कर कृषि योग्य बनाना अति आवश्यक है क्योंकि भूमि की उत्पादक क्षमता सीमित है और एक स्तर के बाद बढाना संभव नहीं है। इस कारण अनुपजाऊ समस्याग्रस्त भूमि को सुधार का फसलों के उपयुक्त बनाना ही एक मात्र विकल्प है।

क्षारीय मृदा की पहचान

1. इस प्रकार की मृदा का विस्तार मूलत: अर्धशुष्क व अल्पार्द्र क्षेत्रों में पाया जाता है।
2. इस प्रकार की मृदा में वर्षा का जल लम्बे समय तक ठहरा रहता है।
3. खडे हुए पानी का रंग काला, भूरा, गंदला व साबुनी होता है।
4. आमतौर पर भूमिगत जल मीठा होता है।
5. कुछ गहराई पर कैल्शियम कार्बोनेट की कंकरियों का पाया जाना।

क्षारीय भूमि में वृक्षारोपण की विधि व होल बनाने का समय

क्षारीय भूमि में गहराई पर कठोर परत मिलने के कारण वृक्षारोपण के लिये अधिक गहराई तक मृदा को सुधारने की आवश्यकता होती है। इसके लिये ट्रैक्टर औगर की मदद से 120 से 150 सैं.मी. गहरे तथा 20 से 25 सैं.मी. व्यास के गड्ढे बनाए जाते हैं। पौधे लगाने से पहले इन गड्ढों को उसी मिट्टी और 3-4 किलोग्राम जिप्सम, 8-10 किलोग्राम गोबर की खाद, 10 किलोग्राम नदी की रेत और 10 ग्राम ज़िंक सल्फेट के मिश्रण से दुबारा भर दिया जाता है।

औगर होल बनाने के लिये मई-जून के महीने उपयुक्त रहते हैं। औगर होल को जितनी जल्दी हो सके, बनाये हुए मिट्टी के मिश्रण से भर देना चाहिए।

रोपण का समय : पेड़ लगाने के दो मौसम हैं- पहला फरवरी से मार्च और दूसरा जुलाई से सितम्बर। असिंचित और कम पानी वाले क्षेत्रों में दूसरे मौसम को प्राथमिकता दी जाती है।

क्षारीय भूमि में उपयुक्त

वृक्षक्षारीय भूमि की सहनशीलता	मृदा का पी.एच.	उपयुक्त वृक्ष
अत्याधिक सहनशील	10.0 से अधिक	पहाड़ी कीकर, देशी कीकर, फ्रांस एवं जोड़-तोड़।
सहनशील	9.2-10.0	जंगली जलेबी, सफेदा, अर्जुन, इमली, पापड़ी खैर, ढाक, लसूड़ा एवं सिरस
मध्यम सहनशील	9.0 -9.5	शीशम, नीम, सिल्वर ओक, बकाइन, सूबबूल, सैंजना, बांस, शहतूत एवं आस्ट्रेलियन कीकर
संवेदी	9.0 से कम	पोपलर, टीक, बाम्बेक्स सीबा आदि।

पेड़-पौधों द्वारा क्षारीय भूमि में सुधार : क्षारीय भूमि को पेड़-पौधों को लगा कर सुधारा जा सकता है क्योंकि जीवांश के सड़ने से मृदा में कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होता है जोकि मृदा में उपस्थित तत्वों से क्रिया तथा निष्क्रिय करके दूसरे घटक में बदलता है जिससे मृदा में निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं :

1. मृदा का पी. एच. मान सामान्य हो जाता है।
2. कार्बनिक पदार्थों में बढ़ोत्तरी होती है एवं भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
3. मृदा में उपस्थित जीवांश के अपघटन के बाद पौधों के आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ जाती है।
4. भूमि में रन्ध्राकार तथा वायु के आवगमन में वृद्धि होती है तथा हानिकारक लवणों में कमी हो जाती है।

[1]वानिकी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]कृषि महाविद्यालय,कौल।

बीज उपचार के लाभ

✍ राजेश कथवाल, विक्रम सिंह[1] एवं के. डी. शर्मा[2]

सस्य विज्ञान विभाग

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में किसानों द्वारा रबी के मौसम में गेहूं, सरसों, चना, मटर, जौ, जई इत्यादि की फसलें बोई जाती हैं। बीज के प्रबन्धन के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य बीज उपचार का आता है। बीज उपचार करने के लिए 12 से 24 घंटे का समय आवश्यक है। बीज उपचार की तरतीब का पता होना भी आवश्यक है। माप तोल के लिए भी काफी विचार करना पड़ता है। 2 ग्राम मात्रा किसान कैसे तोलें ? ये इस तरह के प्रश्न हैं जिनका व्यावहारिक जवाब देना अत्यावश्यक है। प्रत्येक कीटनाशक, फफूंदनाशक व जैविक खाद के साथ तोलने के लिए कुछ न कुछ तो दिया होता है किन्तु ऐसा हमेशा संभव नहीं। इसके लिए सबसे सरल उपाय यही है कि किसान जहां से उपचार का सामान खरीदता है उसे वहीं के दुकानदार से सामग्री को तुलवाना चाहिए। दूसरा उपाय यह है कि इसके लिए किसान ग्राम या मिलीलीटर का माप खरीद कर रख ले। वैसे एक मेज चम्मच 8 ग्राम का पदार्थ ग्रहण करती है, किन्तु यह कुछ त्रुटिपूर्ण हो सकता है लेकिन अन्दाजन यह काम कर सकता है।

फसल व उनमें बीज उपचार

फुटाव के लिए : गेहूं की पछेती बिजाई में शीघ्र व अधिक जमाव व फुटाव के लिए बीज को रात भर 12 घंटे भिगोएं। भिगोने वाले बर्तन में पानी का स्तर बीज से 2 सैंटीमीटर ऊपर रखें। बीज को पानी से निकालने के बाद चटाई या फर्श पर छाया में सुखाएं। तत्पश्चात् बीज को अनुमोदित कीटनाशक, फफूंदनाशक व जैविक खाद से उपचारित कर फरकरा होने पर एक घंटे बाद बिजाई करें।

बीमारी के लिए बीज उपचार

1. गेहूं में पत्तियों की कांगियारी और करनाल बंट के लिए बीज उपचार
   क. पत्तियों की कांगियारी : वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम या टैब्यूकोनाज़ोल (रैक्सिल – 2 डी.एस.) 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।
   ख. जौ में खुली कांगियारी के लिए बीज उपचार : वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।
   ग. जई में खुली कांगियारी के लिए बीज उपचार : वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें।

2. क. करनाल बंट– बीजजनित करनाल बंट के बीजाणुओं के लिए बीज का थाइरम 2 ग्राम या टैब्यूकोनाज़ोल (रैक्सिल– 2 डी.एस) 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से सूखा उपचार करें।

2. ख. मसूर (लैंटिल) में राइजोबियम का टीका उपचार –मसूर की अधिक पैदावार के लिए बीज को राइजोबियम के टीके से उपचार करें।

2. ग. चने में उखेड़ा रोग के लिए बीज उपचार – बाविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से बीज को उपचारित करें। बिजाई से पूर्व बीज का उपचार जैविक फफूंदनाशक ट्राईकोडरमा विरिडी (बायोडरमा) 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के साथ वीटावैक्स 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। बीजोपचार के लिए 4 ग्राम बायोडरमा और 1 ग्राम वीटावैक्स का उतनी मात्रा के बराबर पान (5 मिलीलीटर) में लेप बनाकर प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। यह उपचार रोगग्राही किस्मों के लिए है।

2 घ. मटर में जड़गलन तथा पौधों का मुरझाना – बाविस्टीन से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीज का उपचार करें।

2 ड. सरसों/राया में तना गलन के लिए बीज उपचार –बिजाई से पहले 2 ग्राम कारबेन्डाज़िम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें।

2 च. सूरजमुखी में जड़ एवं तना गलन – बीज का उपचार बाविस्टीन 2 ग्राम या थाइरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से करें।

2 छ. अलसी (फ्लैक्स सीड) में बीज गलन व आर्द्रगलन (डैम्पिंग ऑफ) के लिए बीज उपचार – बीज का 3 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें।

2 ज. बसंतकालीन मक्का में बीज उपचार – रोगों से बचाने के लिए थाइरम 4 ग्राम या कैप्टॉन 2.5 ग्राम प्रतिकिलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

सूत्रकृमि के लिए बीज उपचार

3. गेहूं में मोल्या रोग के लिए बीज उपचार : एजोटोबैक्टर एच.टी. 54 टीके की एक शीशी (50 मि.ली.) प्रति 10 किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। इस बीज को छाया में सुखा कर बोयें।

कीट प्रबंधन के लिए बीज उपचार

4. क. गेहूं में दीमक की रोकथाम के लिए बीज उपचार : 40 किलोग्राम गेहूं के बीज को 60 मिलीलीटर क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. या 200 मिलीलीटर इथियोन 50 ई.सी. (फॉसमाईट 50 ई.सी.) से उपचारित करें। इन कीटनाशकों में से किसी एक को पानी में मिलाकर 2 लीटर घोल बना लें। फिर बीज को एकसार फर्श पर डाल कर बिछा दें और यह घोल ऊपर से छिड़क दें। बीज को हिला दें ताकि यह घोल सब बीजों पर लग सके। उपचारित बीज को रात भर सूखने के बाद ही बोयें। उपर्युक्त उपचार से बीज फूल जाते हैं। इसलिए सीड–ड्रिल का डिस्चार्ज रेट 10 प्रतिशत बढ़ा दें।

4. ख. जौ में दीमक की रोकथाम के लिए बीज उपचार : दीमक की रोकथाम के लिए 100 किलोग्राम जौ के बीज को 600 मिलीलीटर क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. से उपचारित करें। इसके लिए क्लोरपायरीफॉस को पानी में मिलाकर कुल 12.5 लीटर घोल बनायें व उपचार करें।

जैविक खाद का प्रयोग

5. क. चने में राइजोबियम का बीज उपचार : चने की अच्छी पैदावार लेने के लिए बिजाई से पहले बीज का राइजोबियम के टीके से उपचार करें। इस उपचार से जड़ों में ग्रन्थियां अच्छी बनती हैं। राइजोबियम का टीका करने का ढंग इस प्रकार है : 50 – 60 ग्राम गुड़ को 2 कप पानी में घोल लें। फिर इस घोल को एक एकड़ के बीजों में मिला दें। गुड़ लगे बीजों पर चने के टीके को डाल कर हाथ से मिलाएं ताकि द्रव्य बीजों पर अच्छी तरह लग जाए। इसके बाद उपचारित बीज को छाया में सुखाकर बीजें।

5. ख. मटर में राइजोबियम का टीका उपचार – बिजाई से पहले बीज का राइजोबियम के टीके से उपचार करें।

[1]आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

[2]रामधन सिंह बीज फार्म, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

समन्वित कृषि प्रणाली : सीमांत किसानों के लिए वरदान

उमा देवी, पवन कुमार एवं धीरज पंघाल
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण शहरीकरण व औद्योगीकरण के दबाब के कारण हमारी खेती योग्य भूमि का आकार घटता जा रहा है। वर्तमान में भारत के 86 प्रतिशत किसान छोटे एव सीमांत कृषक की श्रेणी में आते हैं। भविष्य में इस श्रेणी की संख्या और अधिक बढ़ सकती है। इस तरह के किसानों को मौसम सम्बन्धी विषमताओं जैसे बाढ़, सूखा और अन्य प्राकृतिक आपदाओं का बड़े आकार के फार्मों के मुकाबले ज़्यादा सामना करना पड़ता है। किसानों की इन श्रेणियों की स्थिति में सुधार के लिये यह ज़रूरी है कि उनकी आमदनी बढ़ाई जाये और इस तरह के भूमिहीन, सीमान्त और छोटे किसान परिवारों के लिये रोज़गार के अवसरों में भी बढ़ोत्तरी हो। पशुपालन, बागवानी (सब्ज़ी,फल,औषधीय और सुगन्धित पादप), मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पाद, मछली पालन जैसे द्वितीयक और तृतीयक उद्यमों के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। यह रणनीति निश्चित तौर पर भारत को कृषि में दूसरी हरित क्रांति लाने में सहायता करेगी तथा पर्यावरण पर हो रहे खतरे को भी कम करने में सफल होगी।

समन्वित कृषि प्रणाली के अनिवार्य घटक : मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखना और प्राकृतिक संसाधनों के सही प्रबन्धन से खेत को टिकाऊ आधार प्रदान करना। इसके अन्तर्गत जो बातें शामिल हैं, वे इस प्रकार हैं :

1. मिट्टी को उपजाऊ बनाना : रसायनों का आवश्यकतानुसार उपयोग, फसली अपशिष्ट का खाद के रूप में उपयोग करना, जैविक और जैव उर्वरकों का उपयोग करना, फसलों को अदला-बदली करके बोना और उनमें विविधता, ज़मीन की ज़रूरत से ज्यादा जुताई न करना।

2. तापमान का प्रबन्धन : ज़मीन को ढंककर रखना, पेड़-पौधे और बाग लगाना और तटबन्धों पर झाड़ियां उगाना।

3. सौर ऊर्जा का उपयोग : विभिन्न प्रकार की फसल प्रणालियों और अन्य पेड़-पौधे उगाकर पूरे साल ज़मीन को हरा-भरा बनाए रखना।

4. कृषि आधान में आत्मनिर्भरता : अपने लिये बीजों का अधिक-से-अधिक उत्पादन करना, अपने खेतों के लिये खुद कम्पोस्ट खाद बनाना, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवॉश, तरल खाद और वनस्पतियों का रस बनाना।

5. मवेशियों के साथ तालमेल : मवेशी कृषि प्रबन्धन के महत्त्वपूर्ण घटक हैं और उनके न सिर्फ कई तरह के उत्पाद मिलते हैं बल्कि वे ज़मीन को उपजाऊ बनाने के लिये पर्याप्त मात्रा में गोबर और मूत्र भी उपलब्ध कराते हैं।

6. फिर से इस्तेमाल की जा सकने वाली ऊर्जा का उपयोग : सौर ऊर्जा, बायोगैस और पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल यंत्रों और उपकरणों का उपयोग।

7. पुनर्चक्रण : खेती से प्राप्त होने वाले अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण कर अन्य कार्यों में इस्तेमाल करना।

8. परिवार की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करना : परिवार की भोजन, चारे, आहार, रेशे, ईंधन और उर्वरक जैसी बुनियादी ज़रूरतों को खेत-खलिहानों से ही टिकाऊ आधार पर अधिकतम सीमा तक पूरा करने के लिये विभिन्न घटकों में समन्वय और सृजन।

9. सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पूरे साल आमदनी : बिक्री को ध्यान में रखकर पर्याप्त उत्पादन करना और कृषि से सम्बन्धित मधुमक्खी पालन, मशरूम की खेती, खेत-खलिहान में ही प्रसंस्करण व मूल्य संवर्धन, दर्जीगिरी, कालीन बनाना आदि गतिविधियाँ संचालित करके परिवार के लिये पूरे साल आमदनी का इन्तज़ाम करना ताकि परिवार की सामाजिक ज़रूरतें जैसे, शिक्षा, स्वास्थ्य और विभिन्न सामाजिक गतिविधियां सम्पन्न हो सकें।

समन्वित कृषि प्रणाली के लाभ :

कूड़े का उचित प्रबन्धन एवं ऊर्जा की उपलब्धता : इस कृषि प्रणाली में एक घटक से उत्पन अवशेष दूसरे घटक के लिए कच्चे माल का काम करता है, जैसे फसलों के अवशेष पशुओं के चारे में तथा पशुओं का मल-मूत्र फसलों के लिए खाद के रूप में काम आता है। पशुओं का विभिन कृषि क्रियाओं में जैसे जुताई, पिसाई, भार वाहन आदि में उपयोग किया जाता है।

अतिरिकत आमदनी एवं प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी उपयोग : दूध व दूध से बने उत्पाद (दही, घी आदि) के अलावा गायों से प्राप्त मूत्र व गोबर का आयुर्वैदिक औषधियों व कीटनाशक के रूप में उपयोग करके किसान अपनी आय बड़ा सकते हैं। खेती में समकालित विधियों का प्रयोग करके हम अपने प्राकृतिक संसाधनों को अति दोहन से बचाकर भावी पीढ़ी के लिए बचा सकते हैं।

पोषक तत्वों का चक्र : पशुओं और फसलों के बीच आपसी निर्भरता होने से एक का उत्पाद दूसरे की ज़रूरत बन जाता है। लेकिन यह चक्र विभिन घटकों की आंशिक पूर्ति ही कर सकता है, जिस कारण अन्य बाहरी साधनों जैसे फसलों के लिए रासायनिक खाद व पशुओं के लिए अतिरिक्त दाना आदि की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। अतः समकालित फसल-पशु प्रणाली में पोषक तत्व का चक्र एक मुक्त केंद्रीय उपागम है और समकालित फसल- पशु प्रणाली आंशिक रूप से परस्पर निर्भर रहते हुए एक दूसरे की पूरक हैं।

उर्जा उत्पादन एवं पशु उत्पादन के लिए पशु गोबर का प्रभावी उपयोग : गोबर के उपले बनाकर केवल ईंधन के रूप में प्रयोग करने की बजाय उसका बायोगैस उत्पादन में उपयोग किया जाना चाहिये जिससे गांवों में घरेलू काम जैसे खाना पकाना , रोशनी करना एवं विभिन्न उद्यमों जैसे चक्की एव पंप चलाना आदि कार्यो के लिए आवश्यक ऊर्जा आसानी से उपलब्ध होने के साथ उत्तम खाद भी मिल जाती है। पशुओं के मल-मूत्र को खुला सड़ने देने की बजाय उचित ढंग से गोबर गैस बनाकर प्रयोग करने से ग्रीन हाऊस प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

भारत में अपनाई जाने वाली समन्वित कृषि प्रणालियां

फसल+पशुपालन
बागवानी+पशुपालन
फसल+बागवानी+पशुपालन
फसल+कृषि वानिकी+पशुपालन
फसल+मछलीपालन
फसल+पशुपालन+मुर्गीपालन
बागवानी+मधुमक्खी पालन
फसल+बागवानी+कृषि वानिकी+पशुपालन

बेर के कीट व उनकी रोकथाम

रामकरण गौड़, एस.पी.यादव एवं सुशील शर्मा[1]
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

शाकाहारी भोजन में फलों का विशेष महत्व है। भारत में वर्ष 2018-19 में फलों का कुल क्षेत्रफल लगभग 6530000 हैक्टेयर तथा इसका उत्पादन लगभग, 96754000 मीट्रिक टन आंका गया। फलों में बेर को उगाने में सबसे कम लागत व मेहनत की ज़रूरत होती है। बेर का पेड़ फलों के साथ-साथ जलाने के लिए लकड़ी, कांटेदार टहनियां खेत में बाड़ करने के लिए व हरे पत्ते चारा के लिए देता है। यह पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, गुजरात तथा महाराष्ट्र आदि में उगाया जाता है। बेर में प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व तथा सस्ता होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र में इस फल का बहुत ही प्रचलन है। बेर को गरीब का सेब भी कहा जाता है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड द्वारा उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, भारत में बेर का क्षेत्रफल लगभग 50,000 हैक्टेयर तथा इसका उत्पादन लगभग, 633,000 मीट्रिक टन वर्ष 2018-19 में आंका गया। अगर किसान बेर में लगने वाले कीटों की पहचान सही समय पर करके उनका सही समय पर नियन्त्रण करें तो उत्पादन को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है।

बेर की फल मक्खी : इस कीट की केवल सूण्डी हानिकारक होती है, जो क्रीम से सफेद रंग की और देखने में उबले हुए चावल जैसी होती है। इसके प्रौढ़ घरेलू मक्खी जैसे होते हैं, परन्तु इसका रंग भूरा-पीला होता है। इनका प्रौढ़ आकार में घरेलू मक्खी से थोड़ा छोटा होता है। इनके पंखों पर सलेटी भूरे रंग के धब्बे होते हैं। जब फल मटर के दाने जितना होता है तब मादा मक्खी फलों के छिलकों में अण्डे देती है। प्रभावित फल टेढ़े-मेढ़े आकार के और काने हो जाते हैं। फल जल्दी पककर गिर जाते हैं। ऐसे फल खाने के योग्य नहीं रहते और बाज़ार में इनका भाव नहीं मिल पाता है। यह कीट 7 से 24 दिन तक सूण्डी अवस्था में रहकर नुकसान करता है तथा नवम्बर से अप्रैल तक इसकी 3 से 4 पीढ़ियां होती हैं। इसका नुकसान अगेती व पछेती फसल और अधिक मिठास वाले फलों में अधिक होता है।

रोकथाम :

1. आक्सीडिमेटान मिथाइल 25 ई.सी. या 500 मि.ली. डाइमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिडकाव करें। मध्य-दिसम्बर में अगर फल मक्खी का आक्रमण जारी रहे तो इन दवाइयों का छिड़काव दोबारा करें।
2. जनवरी के आखिर में 500 मि.ली. मैलाथियान (सायाथियान) 50 ई.सी., 5 किलोग्राम गुड़ या चीनी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।
3. कीट ग्रसित फलों को प्रतिदिन इकट्ठा करके ज़मीन में 2 फीट गहरा दबा दें या भेड़ बकरियों को खिला दें।
4. मई-जून और दिसम्बर-जनवरी में वृक्षों के आसपास की ज़मीन को अच्छी तरह खोद दें।

लाख कीट : इसके शिशु लाल बैंगनी रंग के तथा 0.60 x 0.25 मि.मी. आकार के होते हैं। मादा कीट बैंगनी रंग के तथा 1.5 मि.मी. लम्बे होते हैं। इसके छोटे शिशु काफी संख्या में नरम टहनियों से रस चूसते हैं। जिससे पैदावार व गुणवत्ता में भारी कमी आ जाती है। इनका शरीर चिपचिपे पदार्थ से ढका होता है। शिशुओं के त्यागे मल पर फफूंदी लग जाती है। इस कीट का प्रकोप जून जुलाई से बैसाखी तक होता है। पुरानी आक्रमित टहनियों से प्रकोप फैलने में मदद मिलती है। जिन बागों की भली प्रकार से देखभाल नहीं होती वहां इसका प्रकोप अधिक होता है।

रोकथाम :

1. फल लेने के बाद टहनियों के प्रकोपित भाग को काटकर जला दें।
2. नया फुटाव आने पर 600 मि.ली. आक्सीडिमेटान मिथाइल 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से अगस्त सितम्बर में छिड़कें।
3. बेर की मक्खी की रोकथाम के लिए जो दवाइयां बताई गई हैं उनके प्रयोग से इस कीड़े की बैसाखी पीढ़ी से रक्षा की जा सकती है।

पत्ते खाने वाली भूण्डियां : यह एक बहुभक्षी कीट है। इसका प्रकोप शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में ज़्यादा पाया जाता है। इनके प्रौढ़ वृक्षों के पत्तों को खूब खाते हैं जबकि इनकी सूण्डियां अनेक फसलों की जड़ों को मानसून या पहली वर्षा के बाद हानि पहुंचाती हैं। प्रौढ़ तगड़े व भूरे चमकीले होते हैं तथा सांयकाल के समय ज़मीन से बाहर आते हैं। रात में पौधों के पत्तों को खाते हैं तथा दिन निकलते ही ज़मीन में छिप जाते हैं। अधिक प्रकोप की अवस्था में वृक्षों के पत्ते खत्म कर देते हैं व इस तरह के वृक्षों पर फल नहीं लगते।

रोकथाम :

इस कीट की रोकथाम के लिए सांयकाल को 500 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड छिड़काव करें। छिड़काव प्रौढ़ों के निकलने के एक दिन बाद करें।

दीमक : इस कीट का ज़्यादा नुकसान पौध में या नए लगाए हुए पौधों में होता है। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु इसके लिए लाभकारी होती है। ये कीट सूर्य की रोशनी पसन्द नहीं करते। ये कीट ज़मीन में रहकर वृक्षों की जड़ों को खाकर तने को खोखला करते हुए ऊपर की ओर बढ़ते हैं या पेड़ों की बाहरी सतह पर मिट्टी की सुरंग बनाकर इसके अन्दर रहकर छाल को खाते हैं। दीमक से प्रकोपित वृक्ष तेज़ आंधी से गिर जाते हैं।

रोकथाम :

1. वृक्षों के आसपास गहरी जुताई करें व पानी दें जिससे दीमक का प्रकोप कम हो जाए।
2. गोबर की हरी व कच्ची खाद प्रयोग में न लाएं क्योंकि यह खाद दीमक को बढ़ावा देती है।
3. जहां तक हो सके रानी दीमक को नष्ट करें।
4. पौधे लगााने से पहले गड्ढे में 50 मि.ली. क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. 5 लीटर पानी में मिलाकर प्रति पौधा डालें। दवाई का घोल डालने से पहले प्रत्येक गड्ढे में 2-3 बाल्टी पानी डाल दें।
5. नये पौधों में एक लीटर क्लोरपाइरिफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई करते समय डालें।

छाल खाने वाली सूण्डियां : यह कीट प्राय: दिखाई नहीं देता परन्तु जहां टहनियां अलग होती हैं वहां पर इसका मल व लकड़ी का बुरादा जाले

(शेष पृष्ठ 06 पर)

[1]बागवानी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

आम के रोग व नियन्त्रण

राजेद्र सिंह, ममता एवं हवा सिंह सहारण
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आम फलों का राजा है। आम के पेड़ों पर कई बीमारियां लगती हैं। जिनकी समय पर रोकथाम न की जाए तो फलों को नुकसान को सकता है। आम की प्रमुख बीमारियां और उनकी रोकथाम के उपाय नीचे दे रहे हैं :

विकृति रोग या गुच्छा-मुच्छा (मालफोरमेशन) : यह रोग अत्यधिक व्यापक व घातक हैं। इस रोग का प्रकोप पौधों की किस्म, आयु, मौसम एवं स्थान के अनुसार अलग-अलग देखने में आता है। इसके दो प्रकार के लक्षण दिखाई पड़ते हैं:

पहले प्रकार में अधिकतर बड़े पेड़ों पर बौर आते समय फूलों के स्थान पर फूलों का गुच्छा सा बनता है। इन गुच्छों में छोटी-छोटी पत्तियां भी दिखाई देती हैं। ऐसे रोगी फूल स्वस्थ फूलों से पहले आते हैं। और इन गुच्छों में मादा फूलों की अपेक्षा नर फूलों की संख्या अधिक होती है। ऐसे गुच्छों पर फल नहीं लगते हैं और अगर लग भी जाएं तो छोटी अवस्था में गिर जाते हैं।

दूसरे प्रकार में छोटे पेड़ों की पहली व दूसरी शाखाओं के सिरों के निकट नई पत्तियों की वृद्धि होती है और छोटी-छोटी पत्तियों का एक गुच्छा सा बन जाता है। जो झाड़ू के रूप में दिखाई देती है। रोगग्रस्त पौधों की वृद्धि रुक जाती है। कभी-कभी बहुत छोटी अवस्था में पौधे मर भी जाते हैं।

कारण : यह रोग फ्यूजेरियम मोनीलीफर्मि फफूंद द्वारा पुष्पवृन्तों पर आक्रमण के फलस्वरूप होता है। पौधों में हार्मोन्स का असन्तुलन होने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। बौर आते समय तापमान कैल्शियम-नाइट्रोजन का अनुपात, विषाणु पूरा वर्ष अधिक सिंचाई एवं भूमि में विभिन्न तत्वों की कमी होना आदि कारक इस रोग में महत्व भी रखते हैं।

नियन्त्रण : रोग नियन्त्रण के लिए अगस्त, सितम्बर में सभी बेढंगे फूलों या रोग ग्रस्त गुच्छों (कोंपलों) को लगभग 6 से 12 इंच पीछे से टहनी को कैंची से काट दें।

फफूंदी व कीड़ों से बचाव के लिए अगस्त-सितम्बर तथा दिसम्बर-जनवरी में कैप्टान 0.1 प्रतिशत (100 ग्राम दवा 100 लीटर पानी) व मैलाथियान 0.1 प्रतिशत के मिश्रण टोनिक मिलाकर छिड़काव करें। पुष्प गुच्छे बनने की अवस्था में बाविस्टिन नामक दवा का 0.2 प्रतिशत (200 ग्राम दवा 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। एक सप्ताह के अन्तराल पर इसके तीन छिड़काव करें। पेड़ों को फरवरी के मध्य में प्रारम्भिक फूलों से रहित करने से भी रोग का नियन्त्रण किया जा सकता है।

सितम्बर के अन्त में या अक्तूबर के प्रारम्भ में 300 पी.पी.एम. नैप्थलीन एसिटिक एसिड (30 ग्राम एन.ए.ए. 100 लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

टहनीमार रोग (एन्थ्रेक्नोज़): यह रोग पत्तियों, टहनियों, फूलों तथा फलों को प्रभावित करता है। पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में आपस में मिलकर पत्तों के अधिकतर भाग पर फैल जाते हैं। धब्बे के स्थान पर पत्ती सूख जाती है और प्रायः फट जाती है। टहनियों पर रोग ऊपरी भाग से शुरू होता है। जहां हल्के भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। ऐसी टहनियों की पत्तियां सूखकर झड़ने लगती हैं और अन्त में टहनी भी सूख जाती है। यदि बौर आने के समय मौसम नम हो जाए तो यह रोग फूलों को भी नष्ट कर देता है। बौर पर बहुत छोटे काले धब्बे पड़ जाते हैं और फूल सूखकर गिर जाते हैं। फलों पर इस रोग का आक्रमण पकने से पहले ही हो जाता है परन्तु लक्षण पकने पर ही धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। धब्बों के बीच का भाग थोड़ा सा धंस जाता है।

यह फफूंद रोग ग्रस्त पत्तियों व टहनियों पर जीवित रहकर अनुकूल वातावरण में पुनः सर्वमित करता है। पानी की बौछार तथा कीड़ों आदि से इसका फैलाव होता है।

बचाव : रोगग्रस्त टहनियों को काट दें। कटे स्थान पर बोर्डो पेस्ट लगा दें और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (ब्लाइटॉक्स) 0.3 प्रतिशत घोल का जनवरी-फरवरी, अप्रैल व सितम्बर में छिड़काव करें।

सफेद चूर्णी रोग : फूलों पर सफेद चूर्ण के रूप में लक्षण दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त फूल गिर जाते हैं फूल लगने के समय रातों का ठंडा तथा बारिश आदि का हो जाना रोग के फैलाव एवं उत्पत्ति में सहायक होता है। जिससे फलों की संख्या में कमी आ जाती है यह फफूंद आम के पेड़ पर जीवित रहता है और इसका फैलाव हवा द्वारा होता है।

नियन्त्रण : यह रोग भट्टों की ज़हरीली गैस के कारण निकट के बागों में विशेषकर दिखाई देता है। इस रोग के प्रकोप से आम के फल नीचे से काले जले हुए हो जाते हैं और बाद में सड़ जाते हैं। कई बार फल सिरे से बेढंगे से लम्बे, पहले से पक जाते हैं और एक सिरा काला हो जाता है जो आधे फल तक चला जाता है।

बोरेक्स 0.6 प्रतिशत (6 ग्राम एक लीटर पानी) के 2 छिड़काव फूल आने से पहले फरवरी से अप्रैल में करें। तीसरा छिड़काव फल बनने के बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का करें। जुलाई से सितम्बर माह में सभी बेढंगे फूलों के गुच्छे काट डालें। पौधों को अच्छी तरह खाद दें।

(पृष्ठ 05 का शेष)

के रूप में दिखाई देता है। इसके प्रकोप से पोधों के दूसरे भागों में पोषक तत्व नहीं पहुंच पाते हैं। तेज़ हवा चलने पर टहनियां या तने टूटकर गिर जाते हैं जिन बागों की देखभाल नहीं होती उनमें पुराने वृक्षों पर इसका आक्रमण अधिक होता है।

रोकथाम :

1. कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग जाला हटाने के बाद ही करें।
2. फरवरी-मार्च में रूई के फाहों को दवाई के घोल में डुबोकर किसी धातु की तार की सहायता से कीटों के सुराख के अन्दर डाल दें तथा हर सुराख को गीली मिट्टी से ढक दें। घोल बनाने के लिए 10% मिट्टी के तेल का इमल्शन (एक लीटर मिट्टी का तेल+100 ग्राम साबुन+9 लीटर पानी) लगा सकते हैं।
3. कीड़े के प्रत्येक सुराख में निम्नलिखित दवाइयों में से किसी एक का पानी में बनाया गया 5 मि.ली. घोल डाल दें। इसके लिए 2 मि.ली डाइक्लोरवास (नुवान) 76 ई.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाएं तथा इसके बाद सुराखों को मिट्टी से बन्द कर दें।

नोटः आसपास के सभी वृक्षों के सुराखों में भी दवाइयों का प्रयोग करें।

ढींगरी मशरूम उगाने की विधि

राकेश कुमार चुघ, सतीश कुमार एवं सूबेसिंह[1]
पादप रोग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बरसात के मौसम में खेतों में, जंगलों में तथा घरों के आसपास जो दिखाई देती है जिन्हें हम मशरूम या खुम्ब कहते हैं। प्रकृति में लगभग 14-15 हज़ार तरह के खुम्ब पाए जाते हैं परन्तु सभी प्रकार के खुम्ब खाने योग्य नहीं होते हैं क्योंकि कुछ मशरूम ज़हरीले होते हैं। अत: बिना जानकारी के जंगली मशरूम को नहीं खाना चाहिए। इसलिए वैज्ञानिक ढंग से उगाई जाने वाली खुम्ब की सभी किस्में खाने योग्य होती हैं। खुम्ब की खेती भूमिहीन किसानों, बेरोज़गार युवकों व ग्रामीण महिलाओं के लिए आमदनी का अच्छा साधन है। क्योंकि इसकी खेती में अन्य फसलों की भांति भूमि की आवश्यकता नहीं होती। इसकी खेती कच्चे, पक्के कमरे अथवा झोंपड़ी बनाकर की जा सकती है। हमारे देश की जलवायु भिन्न-भिन्न प्रकार की है जिनको ध्यान में रखकर विभिन्न प्रकार के मशरूमों की खेती कर सकते हैं। इन खुम्बों को मौसम के अनुसार लगाकर किसान वर्ष भर रोज़गार प्राप्त कर सकते हैं। भारत में मुख्यत: चार प्रकार के मशरूम की खेती की जाती है - बटन मशरूम, ढींगरी मशरूम, दूध छत्ता या मिल्की मशरूम, धान या पुआल मशरूम। फ्ल्यूरोट्स की प्रजातियों को सामान्यत: ढींगरी खुम्बी कहते हैं। दूसरी खुम्बियों की तुलना में सरलता से उगाई जाने वाली ढींगरी खाने में स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। इसमें वसा तथा शर्करा कम होने के कारण यह मोटापे, मधुमेह तथा रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिए आदर्श आहार है। ढींगरी की खेती का प्रचलन अभी हरियाणा में ज़्यादा नहीं है जबकि इसकी खेती दक्षिण तथा पूर्वी राज्यों में काफी बड़े स्तर पर की जाती है। इसकी खेती की विधि सरल है तथा इस पर खर्चा भी बहुत कम आता है।

खुम्ब उगाने का सही समय : खुम्ब की खेती बड़ी ही आसानी से मई व जून के महीनों को छोड़कर लगभग सारा साल की जा सकती है। इसके कवक जाल के फैलाव के लिए 25-30 डिग्री सैल्सियस तापमान तथा पैदावार के लिए 25 डिग्री सैल्सियस तथा नमी 80-90 प्रतिशत होनी चाहिए। ढींगरी अपना एक फसल चक्र 40-45 दिन में पूरा कर लेती है। इस प्रकार पूरे साल में 5-6 फसल ली जा सकती हैं। ढींगरी की कई प्रजातियां पाई जाती हैं जैसे कि फ्ल्यूरोट्स सजारकाजू, फ्ल्यूरोट्स फ्लोरिडा, फ्ल्यूरोट्स आस्ट्रिएट्स, फ्ल्यूरोट्स फ्लेबेलेट्स तथा फ्ल्यूरोटस सिट्रोनोपिलेट्स आदि प्रमुख प्रजातियां हैं। इनका रंग भिन्न-भिन्न है तथा इनका उत्पादन ग्राहकों की इच्छानुसार किया जा सकता है।

ढींगरी मशरूम उगाने की विधि : ढींगरी की काश्त गेहूं, धान, सरसों का भूसा, मक्का, ज्वार, बाजरा, केले के पत्ते, गन्ने का छिलका, सरसों के डंठल, सूखा घास व अन्य प्रकार के पौधों के अवशेषों पर की जा सकती है। धान की पुआल को 3 से 4 सैं.मी. के छोटे-छोटे टुकडों में काट लें। जिन पौधों के अवशेष बड़े या सख्त हों उन्हें मशीन द्वारा लगभग 3 से 4 सैं.मी. साइज़ में काट लिया जाता है। इन कटे हुए टुकडों को रात भर पानी में भिगो दें। ध्यान रहे कि अवशेष गीला नहीं होना चाहिए व उस पर किसी प्रकार की फफूंद का असर नहीं होना चाहिए। अगले दिन इसे तारों की जाली पर लगभग घंटा भर पड़ा रहने दें ताकि इसका फालतू पानी निकल जाए। व्यापारिक स्तर पर उगाने के लिए 200 लीटर पानी के ड्रम या टब में 90 लीटर पानी में 400 मिलीलीटर फार्मेलीन तथा 30 ग्राम बाविस्टिन के घोल में अवशेषों को 24 घंटे तक उपचार के लिए पड़ा रहने दें। यह उपचार करने से अवशेषों पर हानिकारक सूक्ष्मजीवी, फफूंद, बैक्टीरिया तथा अन्य जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। दूसरे दिन गीले भूसे या पुआल को जाली पर या ढालदार फर्श पर फैला दें जिससे फालतू पानी निकल जाए और 60-70 प्रतिशत नमी रह जाए।

बिजाई (स्पानिंग) करना : गीली धान, गेहूं के भूसे में 2 प्रतिशत खुम्ब का बीज मिलाएं। इस मिश्रण को 45 x 30 सैं.मी. के पॉलीथीन के तीन चौथाई भाग में 2-3 किलो भूसा अच्छी तरह भरें। इन थैलों में 1 सैं.मी. के आकार के 20-25 छिद्र करें ताकि पानी व कार्बन डाईआक्साईड की मात्रा अधिक न होने पाए। इन थैलों का मुंह धागे या रबड़ बैंड से अच्छी तरह बंद कर दें तथा थैलों को किसी हवादार कमरे में रख दें जिसका तापमान 20-30 डिग्री सैल्सियस तथा नमी 80 प्रतिशत के लगभग हो। नमी बनाने के लिए दिन में एक या दो बार स्प्रेयर से पानी का छिड़काव करें। पॉलीथीन के थैलों के स्थान पर लकड़ी की पेटी या टोकरी का प्रयोग किया जा सकता है। बीज डालने के दो-तीन दिन के बाद तूड़ी या पुआल में सफेद धागे से दिखाई देने आरम्भ हो जाते हैं। कवक जाल को फैलने में 12-15 दिन लगते हैं जो भूसे को कड़ा बना देते हैं। इस समय कमरे में अंधेरा ज़रूरी है। इसके बाद पॉलीथीन के थैलों को खोल दें और काट कर पॉलीथीन हटा दें। उन्हें दोबारा एक-एक फुट की दूरी पर रख दिया जाता है। कमरे में पहले की तरह नमी रखने के लिए पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए और 70-85 प्रतिशत नमी बनाए रखें। इस समय कमरे में कम प्रकाश होना ज़रूरी है और कमरे को एक-दो घंटे हवा देना ज़रूरी है। बिजाई के 20-22 दिनों बाद खुम्बी दिखाई देने लगती है तथा 3-4 दिन में तोड़ाई लायक हो जाती है। इसकी 7-9 दिन के अंतर पर 3-4 फसलें आसानी से ली जा सकती हैं।

मशरूम की तुडाई : खुम्ब पूरी तरह से परिपक्व हो जाए तब इनकी तुड़ाई की जानी चाहिए। खुम्ब को मुरझाने से पहले बड़े आराम से मरोड़कर तोड़ना चाहिए। खुम्ब को किसी भी हालत में खींच कर न तोड़ें बल्कि मरोड़ते हुए तोड़ें। थैलों से खुम्ब की तुडाई छिड़काव से पहले करनी चाहिए। मशरूम तोड़ने के बाद डंठल के साथ लगे हुए भूसे को चाकू से काटकर हटा देना चाहिए।

भंडारण उपयोग :

1. ताज़ा ढींगरी को एक छिद्रदार पॉलीथीन में भरकर रैफ्रीजरेटर में दो से चार दिन तक रखा जा सकता है।
2. ढींगरी के विभिन्न प्रकार के व्यंजन जैसे ढींगरी मटर, ढींगरी आमलेट, पकौड़ा आदि बनाए जाते हैं।
3. ढींगरी को ओवन या धूप में सुखाया जा सकता है। सूखी हुई ढींगरी का प्रयोग सब्जी के लिए किया जाता है। इसलिए इसे थोड़ी देर गर्म पानी में डालकर प्रयोग किया जा सकता है।
4. ढींगरी का अचार तथा सूप भी बहुत स्वादिष्ट बनाया जा सकता है।

सावधानियां : ढींगरी की पैदावार के समय अधिक मात्रा में स्पोर्स बनते हैं जिन्हें सुबह उत्पादन कक्ष में देखा जा सकता है। इन स्पोर्स से काम करने वालों को अर्लजी हो सकती है। इसलिए खुम्ब की तुड़ाई के 2 घंटे

(शेष पृष्ठ 10 पर)

[1]सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

अश्वगंधा का औषधीय महत्व

सुषमा बिष्ट[1], एच. के. यादव एवं धर्मेंद्र सिंह[2]
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आमतौर पर अश्वगंधा, भारतीय जिनसेंग, ज़हर करौंदा या शीतकालीन चेरी या *विथानिया सोमनीफेरा* (लैटिन नाम) के रूप में जाना जाता है, जो सोलेनेसी या नाइटशेड परिवार में एक पौधा है। अश्वगंधा नाम संस्कृत भाषा से है, अश्व शब्द का अर्थ है घोड़ा, और गंधा का अर्थ गंध है। जड़ में एक सुगंध होती है जिसे "घोड़े की तरह" के रूप में वर्णित किया गया है। परंपरागत रूप से, यह माना जाता है कि जो व्यक्ति इस हर्बल दवा का सेवन करता है, उसे घोड़े जैसी शक्ति और जीवन शक्ति प्राप्त होगी। सोम्निफेरा नाम की प्रजाति का अर्थ लैटिन में "नींद-उत्प्रेरण" है।

यह प्रजाति एक छोटी, कोमल बारहमासी झाड़ी है जो 35 से 75 सैं. मी. (14 से 30 इंच) लंबी होती है। टोमेंटोज शाखाएं केंद्रीय तने से रेडियल रूप से विस्तारित होती हैं। पत्तियां सुस्त हरी, अण्डाकार होती हैं, आमतौर पर 10-12 सैं.मी. (4 से 5 इंच) तक लंबी होती हैं। फूल छोटे, हरे और बेल के आकार के होते हैं। पका फल नारंगी-लाल होता है।

यह पीले फूलों और एक लाल फल के साथ एक छोटी झाड़ी होती है, जो भारत, उत्तरी अफ्रीका और मध्य पूर्व का मूल निवासी है। विथानिया सोम्निफेरा की खेती भारत के कई क्षेत्रों में की जाती है। यह नेपाल, चीन और यमन में भी पाया जाता है। अर्क आमतौर पर जामुन या पौधे की जड़ों से लिया जाता है। प्रचार करने के लिए इसे शुरुआती वसंत में बीज से, या बाद के वसंत में ग्रीनवुड कटिंग से उगाया जा सकता है।

मुख्य फाइटोकेमिकल घटक विथेनाओलाइड हैं - जो ट्राइटरपीन लैक्टोन हैं - विथेनाओलाइड्स, विथफेरिन ए, अल्कलॉइड्स, स्टेरॉइडल लैक्टोनस, ट्रोपिन, और कस्कोहाइडाइन। कुछ 40 विथेनाओलाइड्स, 12 एल्कलॉइड्स, और कई साइटोइंडोसाइड्स को अलग किया गया है। विशेष रूप से इसकी जड़ का पाऊडर, पारंपरिक भारतीय चिकित्सा में सदियों से इस्तेमाल किया गया है।

अश्वगंधा के स्वास्थ्य लाभ :

1. अश्वगंधा के लाभ तनाव से जूझ रहे लोगों के लिए हैं, क्योंकि यह कोर्टिसोल 'तनाव हार्मोन' के उच्च स्तर को रोकता है। यह वास्तव में ट्रैंक्विलाइज़र और अवसादरोधी दवाओं में उपयोग किया जाता है, क्योंकि यह शारीरिक और मानसिक तनाव को दूर करने और अवसाद को दूर करने में मदद करता है।
2. अश्वगंधा की घाव भरने की क्षमता के लिए आयुर्वेद में एक समृद्ध इतिहास है। परंपरागत रूप से, ताज़ी पत्तियों का उपयोग संयुक्त रूप से जोड़ों के दर्द, त्वचा के घावों को ठीक करने और सूजन को कम करने के लिए किया जाता था।
3. इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजिकल मेडिसिन में प्रकाशित परिणाम बताते हैं कि अश्वगंधा आराम को बढ़ावा देने में मदद करता है क्योंकि यह एक प्राकृतिक एडेपोजेन है।
4. आयुर्वेद में, अश्वगंधा को बलिया के रूप में जाना जाता है, जिसका अर्थ है सामान्य दुर्बलता जैसी स्थितियों में ताकत देना। यह ऊर्जा में सुधार, सहनशक्ति और धीरज बढ़ाने के लिए जाना जाता है।
5. यह मस्तिष्क की स्मृति कार्यों जैसे ध्यान और एकाग्रता में भी सुधार करता है, इसलिए पार्किंसंस, अल्जाइमर और अन्य न्यूरोडीजेनेरेटिव रोगों के लक्षणों के साथ मदद करता है। अश्वगंधा विभिन्न प्रकार के मानसिक अपक्षयी रोगों के लिए एक आशाजनक वैकल्पिक उपचार है क्योंकि इसमें तंत्रिका कोशिकाओं के विकास को बढ़ावा देने और मस्तिष्क की कोशिकाओं को पर्यावरण के हानिकारक प्रभावों से बचाने की क्षमता प्रदर्शित की गई है।
6. अश्वगंधा का उपयोग कामोत्तेजक के रूप में भी किया जाता है, क्योंकि यह यौन स्वास्थ्य का समर्थन करता है। इसका उपयोग पुरुषों और महिलाओं में प्रजनन समस्याओं और यौन इच्छा को बढ़ाने के लिए भी किया जाता है।
7. यह सदियों से एक सामान्य बॉडी टॉनिक के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है, क्योंकि यह आपको मज़बूत और स्वस्थ महसूस कराता है। यह च्यवनप्राश में भी मौजूद है।
8. आपकी समग्र प्रतिरक्षा को बढ़ावा देने के अलावा, अश्वगंधा में कैंसर रोधी एजेंट होने की भी संभावना है क्योंकि यह कैंसर के ट्यूमर के विकास को धीमा कर देता है।
9. अश्वगंधा हार्मोन संतुलन को प्रोत्साहित करके अंत:स्रावी तंत्र पर भी कार्य करता है।
10. अश्वगंधा के कायाकल्प गुण अनिद्रा के इलाज में इसे बहुत प्रभावी बनाते हैं। यह तंत्रिका तंत्र को शांत करता है, तनाव कम करता है और अनिद्रा से छुटकारा दिलाता है।

यह कैसे काम करता है?

अश्वगंधा में रसायन होते हैं जो मस्तिष्क को शांत करने, सूजन को कम करने, रक्तचाप को कम करने और प्रतिरक्षा प्रणाली को बदलने में मदद कर सकते हैं। परंपरागत रूप से, यह वात को शांत करने और आपकी नींद और जागने के चक्र को नियंत्रित करने के लिए शहद और गर्म दूध के साथ मिश्रित पाऊडर के रूप में उपयोग किया जाता है। आप सोने से पहले 1 चम्मच पाऊडर अश्वगंधा के साथ गर्म दूध का एक कप ले सकते हैं।

अश्वगंधा के सौंदर्य लाभ :

इसके शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट गुण मुक्त कणों से होने वाली क्षति से त्वचा की रक्षा करने में मदद करते हैं और अधिक युवा रूप के लिए आपकी त्वचा को मज़बूत करके उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा करते हैं।

स्किनकेयर : अश्वगंधा डीहाइड्रोएपिंआनड्रोस्टेरोन को उत्तेजित करता है, जो टेस्टोस्टेरोन और एस्ट्रोजन दोनों का अग्रदूत है और प्राकृतिक त्वचा तेलों के उत्पादन को उत्तेजित करता है।

स्वस्थ बाल : शैंपू में उपयोग किया जाता है, अश्वगंधा को खोपड़ी के संचलन में सुधार करने और बालों को मज़बूत करने में मदद करने के साथ-साथ रूसी से छुटकारा पाने में मदद करने के लिए माना जाता है। यह मेलेनिन के उत्पादन को भी प्रोत्साहित करता है, जो आपके बालों के रंग के लिए ज़िम्मेदार वर्णक है, तो यह वास्तव में बालों को सफेद होने से भी रोकता है, यही पर्याप्त नहीं है, यह बालों को झड़ने से निपटने में भी मदद करता है।

[1,2]हरियाणा स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (हरसैक), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि. परिसर, हिसार।

जल संरक्षण का महत्व

मुकेश कुमार जाट, प्रमोद कुमार यादव एवं रामस्वरूप दादरवाल
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल (रेवाड़ी)
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जल संकट आज भारत के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। जिस भारत में 70 प्रतिशत हिस्सा पानी से घिरा हो वहां आज स्वच्छ जल उपलब्ध न हो पाना विकट समस्या है, भारत में तीव्र नगरीकरण से तालाब और झीलों जैसे परम्परागत जल स्रोत सूख गए हैं। भारत में वर्तमान में प्रतिव्यक्ति जल की उपलब्धता 2,000 घनमीटर है लेकिन यदि परिस्थितियां इसी प्रकार रहीं तो अगले 20-25 वर्षों में जल की यह उपलब्धता घटकर 1,500 घनमीटर रह जायेगी। जल की उपलब्धता का 1,680 घनमीटर से कम रह जाने का अर्थ है पीने के पानी से लेकर अन्य दैनिक उपयोग तक के लिए जल की कमी हो जाना। इसी के साथ सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता न रहने पर खाद्य संकट भी उत्पन्न हो जायेगा। मनुष्य सहित पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव-जंतु एवं वनस्पति का जीवन जल पर ही निर्भर है। जल का कोई विकल्प नहीं है, यह प्रकृति से प्राप्त नि:शुल्क उपहार है, परंतु बढ़ती आबादी, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और उपलब्ध संसाधनों के प्रति लापरवाही ने मनुष्य के सामने जल का संकट खड़ा कर दिया है, यह 21वीं सदी के भारत के मानव के लिए एक बड़ी चुनौती है। वर्तमान में जल संकट बहुत गहरा है, आज पानी का मूल्य बदल गया है और जल एक महत्वपूर्ण व मूल्यवान वस्तु बन चुकी है। शुद्ध जल जहां एक ओर अमृत है, वहीं पर दूषित जल विष और महामारी का आधार, जल संसाधन, संरक्षण और संवर्धन आज की आवश्यकता है, जिसमें जनता का सहयोग अपेक्षित है। जल न्यूनता या सूखा एवं जल आधिक्य या बाढ़ दोनों ही समस्याएं जल संकट के दो पहलू हैं, जल संकट की निरंतर अभिवृद्धि हो रही है, भूमिगत जल का संतृप्त तल गहराई की ओर खिसकने से परंपरागत जल स्रोत सूख रहे हैं। पृथ्वी पर कुल उपलब्ध जल लगभग 01 अरब 36 करोड़ 60 लाख घन कि.मी. है, परंतु उसमें से 96.5 प्रतिशत जल समुद्री है जो खारा है, यह खारा जल समुद्री जीवों और वनस्पतियों के अतिरिक्त मानव धरातलीय वनस्पति तथा जीवों के लिए अनुपयोगी है। शेष 3.5 प्रतिशत जल मीठा है, किंतु इसका 24 लाख घन कि.मी. हिस्सा 600 मीटर गहराई में भूमिगत जल के रूप में विद्यमान है तथा लगभग 5 लाख घन किलोमीटर जल गंदा व प्रदूषित हो चुका है। इस प्रकार पृथ्वी पर उपस्थित कुल जल का मात्र 01 प्रतिशत ही उपयोगी है। हम एक फीसदी जल पर दुनिया की 06 अरब आबादी समेत सारे सजीव और वनस्पतियां सभी निर्भर हैं। इस मीठे जल से सिंचाई, कृषि कार्य तथा तमाम उद्योग संचालित होते हैं, जल जीवन के लिए अमृत है।

जल प्रकृति के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है। यह नियत मात्रा में उपलब्ध नहीं है इसका दुरुपयोग इसे दुर्लभ बना रहा है। आज भारत सहित दुनिया के अनेक देश जल संकट का सामना कर रहे हैं। भारत में विश्व के कुल मीठे जल की मात्रा 3.5 प्रतिशत मौजूद है जिसका 89 प्रतिशत हिस्सा कृषि क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। जल प्रबंधन की शुरुआत कृषि क्षेत्र से करनी चाहिए क्योंकि सर्वाधिक मात्रा में कृषि कार्यों में ही जल का उपयोग किया जाता है तथा सिंचाई में जल का दुरुपयोग एक गंभीर समस्या है, जनमानस में धारणा है अधिक पानी, अधिक उपज, जो कि गलत है, क्योंकि फसलों के उत्पादन में सिंचाई का योगदान 15-16 प्रतिशत होता है। फसल के लिए भरपूर पानी का मतलब मात्र मिट्टी में पर्याप्त नमी ही होती है परंतु वर्तमान कृषि पद्धति में सिंचाई का अंधा-धुंध इस्तेमाल किया जा रहा है। धरती के गर्भ से पानी की आखिरी बूंद भी खींचने की कवायद की जा रही है। देश में हरित क्रांति के बाद से कृषि के जरिये जल संकट का मार्ग प्रशस्त हुआ है। बूंद-बूंद सिंचाई बौछार (फव्वारा तकनीकी) तथा खेतों के समतलीकरण से सिंचाई में जल का दुरुपयोग रोका जा सकता है। फसलों के जीवन रक्षक या पूरक सिंचाई देकर उपज को दुगुना किया जा सकता है। जल उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिए पौधों को संतुलित पोषक तत्वों का प्रबंध करने की आवश्यकता है, जल की सतत् आपूर्ति के लिए आवश्यक है कि भूमिगत जल का पुनर्भरण किया जाए, भूमिगत जल के पुनर्भरण की आसान और सस्ती तकनीकों से देश के किसान अंजान नहीं है, उन्हें प्रोत्साहन की ज़रूरत है। किसान को बताया जाये कि जहां पानी बरस कर भूमि पर गिरे उसे वहीं यथासंभव रोका जाये। ढाल के विपरीत जुताई तथा खेतों के मेढ़ बंदी से पानी रुकता है। खेतों के किनारे फलदार वृक्ष लगाने चाहिएं, छोटे-बड़े सभी कृषि क्षेत्रों पर क्षेत्रफल के हिसाब से तालाब बनाने ज़रूरी हैं। ग्राम स्तर पर बड़े तालाबों का निर्माण गांव के निस्तार के लिए जल उपलब्ध कराता है। साथ ही भू-गर्भ जल स्तर को बढ़ाता है, देश की मानसूनी वर्षा का लगभग 75 फीसदी जल भूमिगत जल के पुनर्भरण के लिए उपलब्ध है। देश के विभिन्न परिस्थितिकीय क्षेत्रों के अनुसार लगभग 3 करोड़ हैक्टेयर मीटर जल का संग्रहण किया जा सकता है। रासायनिक खेती की बजाय जैविक खेती पद्धति अपना कर कृषि में जल का अपव्यय रोका जा सकता है। जल संकट के कई कारण हो सकते हैं। जल संकट के कुछ कारण निम्नांकित हैं :

1. जनसंख्या में वृद्धि।
2. औसत वर्षा में गिरावट आना।
3. प्रति व्यक्ति जल खपत में वृद्धि।
4. भू-जल स्तर में निरन्तर गिरावट आना।
5. जल का आवश्यकता से अधिक दोहन।
6. लोगों में जागरूकता का अभाव।
7. खारेपन की समस्या।

जल संकट को दूर करने के कुछ उपाय

1. अत्यधिक जल दोहन रोकने के लिए कड़े कानून बनाये जायें जिनमें सजा का प्रावधान हो।
2. तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण एवं परस्पर विवादों को समाप्त करके इस समस्या का निदान किया जाए।
3. समुद्री जल का शोधन कर कृषि कार्यों में उपयोग किया जा सके, ऐसी विधियों की खोज की आवश्यकता है।
4. कोई ऐसी व्यवस्था बनाई जाये जिसके तहत् नदियों के मीठे जल का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके।
5. भूगर्भीय जल भण्डार को रिचार्ज करने के अलावा छत से बरसाती पानी को सीधे किसी टैंक में भी जमा किया जा सकता है।
6. बड़े संसाधनों के परिसर की दीवार के पास बड़ी नालियां बनाकर पानी को ज़मीन पर उतारा जा सकता है। इसी प्रकार कुओं में भी पाइप के माध्यम से बरसाती पानी को उतारा जा सकता है।
7. बरसाती पानी को एक गड्ढे के जरिये सीधे धरती के भूगर्भीय जल भण्डारण में उतारा जा सकता है।

8. उपर्युक्त जल संरक्षण से कुछ सीमा तक जल संकट की समस्या का निराकरण किया जा सकता है। जल को प्रदूषण से मुक्त रखने तथा इसकी उपलब्धता को बनाये रखने के कुछ और भी उपाय किए जा सकते हैं जो निम्नानुसार हैं :
9. रेन वाटर हारवेस्टिंग को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
10. मकानों की छत के बरसाती पानी को ट्यूबबैल के पास उतारने से ट्यूबबैल रिचार्ज किया जा सकता है।
11. शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी अपने मकानों की छत से गिरने वाले वर्षो के पानी को खुले में रेन वाटर कैच पिट बनाकर जल को भूमि में समाहित कर भूमि का जल स्तर बढ़ा सकते हैं।
12. पोखरों इत्यादि में एकत्रित जल से सिंचाई को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे भूमिगत जल का उपयोग कम हो।
13. शहरों में प्रत्येक आवास के लिए रिचार्ज कूपों का निर्माण अवश्य किया जाना चाहिए, जिससे वर्षा का पानी नालों में न बहकर भूमिगत हो जाए।
14. तालाबों, पोखरों के किनारे वृक्ष लगाने की पुरानी परम्परा को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए।
15. ऊंचे स्थानों, बांधों इत्यादि के पास गहरे गड्ढ़े खोदे जाने चाहिएं, जिससे उनमें वर्षा जल एकत्रित हो जाये और बहकर जाने वाली मिट्टी को अन्यत्र जाने से रोका जा सके।
16. कृषि भूमि में मृदा की नमी को बनाये रखने के लिए हरित खाद तथा उचित फसल चक्र अपनाया जाना चाहिए। कार्बनिक अवशिष्टों को प्रयोग कर इस नमी को बचाया जा सकता है।
17. वर्षा जल को संरक्षित करने के लिए शहरी मकानों में आवश्यक रुप से वाटर टैंक लगाए जाने चाहिएं। इस जल का उपयोग अन्य घरेलू ज़रूरतों में किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि जल परमात्मा का प्रसाद है, इसका संरक्षण करना वर्तमान समय की आवश्यकता है। इसका संरक्षण एवं सही उपयोग किया जाना भारत के भविष्य के सतत् विकास हेतु आवश्यक है। जब तक जल के महत्व का बोध हम सभी के मन में नहीं होगा तब तक सैद्धान्तिक स्तर पर स्थिति में सुधार संभव नहीं है। इसके लिए लोगों को जल को सुरक्षित करने के लिए सही प्रबन्धन के अनुसार कार्य करना होगा। यदि वक्त रहते जल संरक्षण पर ध्यान न दिया तो हो सकता है कि जल के अभाव में अगला विश्वयुद्ध जल के लिए हो तो इसमें आश्चर्य नहीं और हम सब इसके लिए ज़िम्मेदार होंगे।

(पृष्ठ 07 का शेष)
पहले दरवाज़े खोल दें ताकि स्पोर्स बाहर निकल जाएं और तोड़ाई के समय नाक पर मास्क या कपड़ा लगाकर कमरों में जाना चाहिए। ढींगरी तोड़ाई के तुरन्त बाद पॉलीथीन में बंद नहीं करनी चाहिए। इसमें पानी होने के कारण इन्हें दो घंटे तक कपड़े पर सुखाना चाहिए। कमरे में 1–2 घंटे तक रोशनी देनी चाहिए, अगर रोशनी न हो तो 1–2 घंटे तक बल्ब जलाना चाहिए। बड़े कमरे में अगर थोड़ी-सी खुम्ब (ढींगरी) लगांएगे तो कमरे में नमी नहीं बन पाएगी और पूरी फसल नहीं ले पाएंगे। कमरे को 2–3 बार खोलना चाहिए क्योंकि कार्बन डाइऑक्साईड की मात्रा ज़्यादा होगी तो डंठल बड़ा हो जाएगा तथा ऊपरी छतरी छोटी रहेगी। खुम्ब को मुड़ने से पहले तोड़ लें तथा तोड़ाई एक बार में ही करें ताकि अगली फसल एक साथ निकल आए।

अर्जुन छाल : स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्व

मीनू सिरोही, वीनू सांगवान एवं छवि सिरोही
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अर्जुन एक सदाबाहरी वृक्ष है जो भारत जैसे गरम जलवायु वाले देश के विभिन्न क्षेत्रों जैसे हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि में पाया जाता है। वैसे तो पोषण व औषधीय दृष्टि से अर्जुन के सभी भाग जैसे पत्तियां, जड़, फल, बीज व छाल सभी उपयोगी हैं परन्तु अर्जुन की छाल स्वास्थ्य की दृष्टि से सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण है। इसकी छाल में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जैसे बीटा कैरोटीन, विटामिन सी, खनिज लवण जैसे कैल्शियम, क्रोमियन, आयरन, ज़िंक, कॉपर, मैग्नीशियम इत्यादि, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर व फाइटोकैमिकल्स जैसे फ्लेवोनॉइड्स, ग्लाइकोसाइड्स, पॉलीफिनाल्स, बीटा सीटोस्टिरोल इत्यादि पाये जाते हैं। ये फाइटोकैमिकल्स तथा विटामिन्स जैसे विटामिन सी व बीटा कैरोटीन शरीर में एण्टीआक्सीडेन्ट्स का कार्य करते हैं। एण्टीआक्सीडेन्ट्स हमारे शरीर में फ्री रेडीकल्स के निर्माण को रोकते हैं और हमारे शरीर को विभिन्न प्रकार के गम्भीर रोगों जैसे कैंसर, हार्ट अटैक, गुर्दे, फेफड़े, लीवर इत्यादि के रोगों व शीघ्र बुढ़ापे से बचाते हैं। अर्जुन की छाल का प्रयोग विशेष रूप से हृदय रोगों व मधुमेह के उपचार के लिये किया जाता है। वैसे तो बाज़ार में विभिन्न प्रकार की मानव निर्मित दवाइयां उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग हृदय रोगों तथा मधुमेह के उपचार के लिये किया जाता है। परन्तु जहां एक ओर हर वर्ग इन्हें खरीदने में असमर्थ है वहीं इन दवाइयों के कई विपरीत प्रभाव भी देखने को मिलते हैं।

विभिन्न अध्ययनों ये यह सिद्ध हो चुका है कि अर्जुन की छाल हृदय व मधुमेह के रोगियों के इलाज के लिए रामबाण है। वहीं दूसरी ओर लम्बे समय तक इसका प्रयोग करने से शरीर के अन्य अंगों जैसे लीवर, गुर्दे इत्यादि पर इसका कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पड़ता है। वैसे तो बाज़ार में आजकल अर्जुन की छाल से बनी चाय, कैप्सूल व गोलियां उपलब्ध हैं परन्तु घर पर भी अर्जुन की छाल से पेय पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। 10 ग्राम अर्जुन की छाल को 300–400 मि.ली. लीटर पानी में तब तक उबाला जाता है जब तक कि पानी की मात्रा 100–150 मि.ली. न रह जाये। फिर उबले पानी को छानकर ठण्डा करके प्रतिदिन सबुह के समय खाली पेट पीना चाहिये।

अर्जुन की छाल के फायदे

1. अर्जुन की छाल में क्यू–10 नामक कोएन्जाइम पाया जाता है जो हृदय की मांसपेशियों को मज़बूत बनाकर हृदय की कार्यक्षमता को बढ़ाता है।
2. यह भोजन में उपस्थित कोलेस्ट्रॉल का बड़ी आंत द्वारा अवशोषण बढ़ा देता है। जिससे शरीर से अधिक से अधिक कोलेस्ट्रॉल का निष्कासन हो सके और शरीर में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा सामान्य बनी रहे।
3. यह लीवर द्वारा पित्त रस के निर्माण को तेज़ कर देता है जिससे ज़्यादा से ज़्यादा कोलेस्ट्रॉल पित्त रस बनाने में प्रयोग हो सके।
4. यह शरीर में बुरे कोलेस्ट्रॉल के निर्माण को कम करता है और अच्छे कोलेस्ट्रॉल के निर्माण को बढ़ाता है।
5. यह कोलेस्ट्रॉल के निर्माण में सहायक एन्जाइम्स की कार्यविधि को कम करता है।

(शेष पृष्ठ 12 पर)

हरे चारे के रूप में वृक्षों का महत्वपूर्ण योगदान

करिश्मा नंदा, संदीप आर्य एवं सतपाल[1]
वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं पशुपालन इसका सदैव एक अभिन्न अंग रहा है। पशुपालन आज भी देश में एक बड़ी मात्रा के लोगों को स्वरोज़गार प्रदान करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग हर घर में पशुपालन से भरण-पोषण किया जाता रहा है। भारत के उष्णकटिबंधीय इलाकों में हरा चारा ज़्यादातर पूरे साल की अवधि में पाया जाता है, परंतु शुष्क एवं अर्ध-शुष्क इलाके जहां वार्षिक वर्षा केवल 300-400 मि.मी. तक ही सिमट जाती है वहां ग्रीष्म ऋतु में बड़ी मात्रा में हरे चारे की कमी पाई जाती है। भारत में इस समय 35.6 प्रतिशत हरे चारे, 10.95 प्रतिशत सूखा चारा तथा 44 प्रतिशत फीड की कमी है जो समय के साथ केवल बढ़ती ही जाएगी। स्रोतों के अनुसार इस कमी को तभी पूरा किया जा सकता है जब हरे चारे की आपूर्ति 1.65 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष बढ़े। कृषि भूमि सीमित होने के कारण चारे की फसल को बढ़ाना थोड़ा कठिन है परंतु चारे की प्राप्ति का स्रोत अगर वृक्षों को बना दिया जाए तो इसका हल निश्चित है। पेड़ों को खेतों की मेढ़ों पर लगाकर अथवा उन्हें कृषि वानिकी के तौर पर लेने से चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है। कृषि वानिकी में सूखा तथा ओलावृष्टि जैसी आपदा के समय भी पशुचारे की उपलब्धता को बनाए रखा जा सकता है। पेड़ों की पत्तियां पौष्टिक होती हैं, इनमें अधिक मात्रा में कच्चा प्रोटीन तथा रेशा पाया जाता है। वृक्ष केवल हरे चारे की ही कमी को पूरा नहीं करते बल्कि विभिन्न उपयोगी गुणों से किसान को फायदा पहुंचाते हैं। खेत में लगाए गए वृक्ष मिट्टी के कटाव को रोकने में सहायक हैं। वृक्ष की मृदा जल संरक्षण करने में सहायक होती है तथा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ा कर ज़मीन को उपजाऊ बनाती है। इन वृक्षों से किसानों को ईंधन, ईमारती लकड़ी तथा शुद्ध वातावरण की भी प्राप्ति होती है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण वृक्ष मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाते हैं जिससे कृषि फसलों को भी लाभ पहुंचता है।

वृक्षों को समय-समय के अंतराल पर चारे के लिए काटे जाने पर भी उन्हें भारी नुकसान नहीं होता है एवं शीघ्र ही फुटाव से उनकी डालियां वापिस हरी-भरी हो जाती हैं। ज़्यादातर वृक्ष सूखे की मार को झेलने में सक्षम होते हैं फलस्वरूप वे ग्रीष्म ऋतु के चरम् पर भी चारा प्रदान करते हैं।

राजस्थान तथा हरियाणा के इलाकों में पाए जाने वाली जन-जातियों का भरण पोषण मुख्यत: पशुपालन से ही होता है। ऐसे में चारे की कमी का होना इन्हें मुश्किल में डाल सकता है। इसका एकमात्र बेहतर उपाय वृक्षों से हरा चारा लेना ही है। निम्नलिखित वृक्ष हरे चारे के लिए उपयोगी वृक्ष हैं: खेजड़ी, शीशम, महानीम, कचनार, नीम, कीकर, इजरायती कीकर, सीरस, बबूल, सूबबुल, आंवला, अंजन इत्यादि।

खेजड़ी : खेजड़ी वृक्ष मरूभूमि एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह वृक्ष भारतवर्ष के राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश तथा दक्कन के सूखे क्षेत्रों में पाया जाता है। यह वृक्ष अत्यधिक प्रकाश की मांग करता है। खेजड़ी वृक्ष को एक आदर्श चारा वृक्ष माना गया है। मरूस्थल की एक कहावत के अनुसार माना गया है कि कठिन परिस्थितियां भी उस मनुष्य का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं जिसके पास खेजड़ी वृक्ष है। आमतौर पर खेजड़ी का एक वृक्ष 60 किलो तक चारा देने में सक्षम है। वर्षा सिंचित क्षेत्रों में सर्द ऋतु के समय जब कोई चारे का स्रोत नहीं होता तब यह वृक्ष बेहद फायदेमंद होता है। वृक्ष की फलियों में मीठा गूदा होता है इसलिए पशु इसे चाव से खाते हैं। आमतौर पर वृक्ष से एक वर्ष की अवधि में 1.4 क्विंटल प्रति हैक्टेयर फलियां प्राप्त की जा सकती हैं।

सुबबूल : सुबबूल एक तीव्र गति से बढ़ने वाला वृक्ष है। सुबबूल पशुओं का पसंदीदा चारा वृक्ष है। परन्तु निमोसिन की मात्रा अधिक होने के कारण इसकी पत्तियों को अकेले चारे के तौर पर लम्बे समय तक नहीं खिलाना चाहिए। सुबबूल की मात्रा चारे में 30 प्रतिशत से कम रखने पर पशु का विकास बेहतर होता है। परन्तु इससे ज़्यादा मात्रा होने पर पशु बीमार हो सकता है एवं उनके बालों का झड़ना भी शुरू हो सकता है। हालांकि सुबबूल की पत्तियों को 700 सेल्सियस के तापमान पर गर्म करने अथवा पत्तियों को अधिक तापमान पर सुखाने से मिमोसिन की मात्रा को कम किया जा सकता है। सुबबूल की पत्तियां एक पूरक चारा हैं अथवा काफी हद तक अल्फाल्फा के चारे से बराबरी करता है। पशुओं को सुबबूल की पत्तियां स्वादिष्ट लगती हैं अथवा इनकी पाचन शक्ति गणन भी प्रशंसनीय है। इसका चारा विटामिन ए तथा केरोटिन का अच्छा स्रोत है। पशुओं को सुबबूल का चारा खिलाने पर उनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है हालांकि दूध का पीलापन कुछ चरवाही के लिए शिकायत का विषय है परन्तु उसे उबालने से या पासच्चुराईज़ेशन से दूर किया जा सकता है। राइजोबियम बैक्टीरिया के उपस्थित होने से यह वृक्ष 500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष नियतन करता है।

महानीम : यह वृक्ष भारत के उत्तरी राज्यों हरियाणा, पंजाब से लेकर दक्षिण में दक्कन पठार तक पाया जाता है। यह वृक्ष अर्धशुष्क एवं अर्ध नम इलाकों में अच्छे से पनपता है। इस वृक्ष की पत्तियां भेड़ एवं बकरियों के चारे के लिए बेहद स्वादिष्ट व पौष्टिक हैं। एक वर्ष के अंतराल में यह वृक्ष दो बार 5-7 क्विंटल तक हरी पत्तियों का चारा प्रदान कर पाने में सक्षम है। वृक्ष की पत्तियों को सुखा कर उन्हें सूखे के समय भी इस्तेमाल किया जा सकता है। पत्तों में कच्चे प्रोटीन की मात्रा भरपूर पाई जाती है तथा पाचनशक्ति गुणक भी पर्याप्त मात्रा में लगभग बरसीम के बराबर पाया जाता है।

शीशम : यह वृक्ष उत्तर भारतीय मैदानों से लेकर राजस्थान तक पाया जाता है। इस वृक्ष की पत्तियां असम, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश तथा महाराष्ट्र में पशुओं को खिलाई जाती हैं। यह एक मध्यम क्षेणी का चारा वृक्ष है। रसीली हरी पकी हुई पत्तियां पशुओं को ज़्यादा स्वादिष्ट लगती हैं। जैसे-जैसे पत्तियां पकती हैं उनके कच्चे प्रोटीन तथा फास्फोरस की मात्रा घटती है परंतु कच्चा रेशा, ईथर, कैल्शियम एवं शुष्क पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। शीशम की पत्तियों का चारा पशुओं को अप्रैल-मई के महीनों में दिया जाना चाहिए। कच्ची पत्तियां खिलाने से कई बार पशुओं को पाचन विकार हो सकते हैं परन्तु साइलोइंग से इस समस्या का हल निकल जाता है।

सहजन : सेंजना उष्णकटिबंधीय इलाकों में पाया जाने वाला वृक्ष है। यह वृक्ष अपने पौष्टिक गुणों के लिए जाना जाता है। पत्तियों से लेकर फल फूल तक इसका हर भाग पौष्टिक तत्वों से भरपूर है। इस वृक्ष की कच्ची फलियों को सब्जी के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। प्रोटीन से भरपूर इन फलियों को चारे के रूप में पशुओं को भी दिया जाता है। फलियों में

[1]चारा अनुभाग, अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

कैरोटिन, निकोटिनिक एसिड, एसकोरबिक एसिड जैसे पदार्थ भी पाए जाते हैं। पत्तियों को हरे चारे के रूप में पशुओं को खिलाया जाता है तथा इनमें पाचन शक्ति गणन भी प्रशंसनीय मात्रा में पाया जाता है।

सिरिस : यह वृक्ष उपहिमालयी क्षेत्रों, पश्चिम बंगाल, छोटा नागपुर क्षेत्र, भारतीय प्रायद्वीप, तमिलनाडू, केरल तथा अंडमान उपद्वीप में पाया जाता है। सिरिस के बीजों एवं फलियों में शुष्क पदार्थ, नाइट्रोजन रहित तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। एक वयस्क वृक्ष 60 कि.ग्रा. पत्तियां, 30 कि.ग्रा. फूल तथा 30 कि.ग्रा. तक फलियां प्रदान करने में सक्षम है।

कचनार : यह वृक्ष उपहिमालयी क्षेत्रों तथा 1500 मी. ऊंचाई के साथ असम, मध्यप्रदेश एवं पश्चिमी भारतीय प्रायद्वीप तक पाया जाता है। खूबसूरत फूलों वाले इस वृक्ष की पत्तियां पशुओं के चारे के रूप में इस्तेमाल की जा सकती हैं। इस वृक्ष से औसत चारे की प्राप्ति 15-20 कि. ग्रा. प्रति वृक्ष पायी गई है। सर्द ऋतु में मध्यम परिपक्व पत्तियों का हरे चारे के रूप में इस्तेमाल कच्ची एवं पकी हुई पत्तियों से बेहतर पाया गया है।

बकैन : बकैन कश्मीर का एक मूल वृक्ष है एवं पूरे भारत में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। बकैन की पत्तियों को चारे के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इसकी पत्तियां बेहद पौष्टिक होती हैं। पशु इसे खाना बेहद पसंद करते हैं। वृक्ष में फुटाव शीघ्र होता है लिहाजा समय-समय पर चारा प्रदान करता है।

शहतूत : सामान्यतः यह वृक्ष उत्तरी भारत में जम्मू से लेकर असम तक पाया जाता है। यह विभिन्न तरह की मिट्टी पर उगाया जा सकता है। यह एक तेज़ बढ़ोत्तरी करने वाला वृक्ष है तथा छाया सहन करने की क्षमता रखता है। शहतूत को एक अच्छे चारे का वृक्ष माना गया है। यह वृक्ष कम से कम 10 टन पत्तियां प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष देने का माद्दा रखता है। शहतूत की पत्तियों में प्रोटीन एवं कैल्शियम की मात्रा अधिक पाई जाती है। पत्तियों में रासायनिक घटन मौसम के हिसाब से घटता-बढ़ता रहता है। फरवरी से लेकर मई तक पत्तियों में अत्याधिक नाइट्रोजन मिलता है। वृक्ष की पत्तियां पशुओं को स्वादिष्ट लगती हैं। शहतूत की पत्तियों का इस्तेमाल मुर्गी पालन में राशन के तौर पर भी किया जाता है। रेशम की खेती में इस्तेमाल की गई इसकी पत्तियों के बचे हुए तनों को भी चारे के रूप में बिना किसी हानि के इस्तेमाल किया जा सकता है। पशु इसके चारे को प्रसन्न होकर खाते हैं। ऐसा पाया गया है कि चारे में शहतूत के पत्तों का इस्तेमाल करने से पशुओं का वज़न बढ़ता है एवं पूर्ण शारीरिक विकास होता है।

नीम : यह वृक्ष अपनी अनुकूलन क्षमता के हिसाब से पूरे भारतवर्ष में पाया जाता है। हालांकि अत्यधिक ठंड सह पाने में सक्षम नहीं है इसलिए 1000 मी. से ऊपर की ऊंचाई पर नहीं पाया जाता है। नीम की पत्तियों को एक अच्छा चारे का स्रोत माना गया है तथा इसकी पत्तियां बकरियों के चारे के तौर पर बहुत इस्तेमाल की जाती हैं। इसकी पत्तियों में 12.40-18.27 प्रतिशत कच्चा प्रोटीन, रेशा 11.40-23.08 प्रतिशत तथा नाइट्रोजन 43.32-66.00 प्रतिशत तक पाया जाता है। नीम की पत्तियों का रासायनिक घटन मौसम तथा जगह के हिसाब से बदलता रहता है। पत्तियों की पाचन शक्ति भी प्रशंसनीय है। उत्तर भारतीय इलाकों में इसकी पत्तियों का इस्तेमाल सर्दियों में चारे के रूप में किया जाता है। एक प्रौढ़ नीम वृक्ष की अवधि में 350 कि.ग्रा. पत्तियां प्रदान कर सकता है जो अकाल के समय पशुओं को चारे के रूप में दी जा सकती हैं। नीम की पत्तियों तथा खली का प्रयोग बकरियों में कृमिनाशक के रूप में भी किया जा सकता है।

करंज : यह वृक्ष भारत वर्ष के आमतौर पर सभी इलाकों में पाया जाता है। यह वृक्ष विभिन्न प्रकार की मिट्टी पर उग पाने में सक्षम है। वृक्ष में वर्षा ऋतु के समय अधिक फुटाव होता है जो पशुओं के चारे के लिए फायदेमंद है। हालांकि वृक्षों से मिली कच्ची पत्तियों को खाना पशुओं को बेस्वाद लगता है। पत्तियों का पाचन शक्ति गणन भी अन्य वृक्षों की तुलना में कम है। करंज की फलियों से निर्मित खली का प्रयोग पॉल्ट्री राशन में काले तिल की फली के साथ मिलाकर किया जाता है।

तालिका 1: चारा प्रदान करने वाले दस प्रमुख वृक्षों की हरी पत्तियों का रासायनिक संघटन (प्रतिशत में)

क्र.स.	वृक्ष	कच्चा प्रोटीन	कच्चा रेशा	वसा	भस्म
1	महानीम	19.8-20.2	21.9-22.9	4.0-4.2	20.0-20.8
2	खेजड़ी	15.3-15.9	22.1-22.7	4.4-4.5	10.0-10.5
3	सहजन	15.3-20.7	7.1-17.9	11.1-12.0	11.8-14.2
4	सुबबूल	18.9-27.6	10.2-17.2	2.6-5.9	11.1-12.0
5	सीरिस	16.8-26.5	26.5-37.5	2.9-4.7	7.1-11.5
6	शीशम	2.7-24.1	12.5-32.0	2.0-4.9	6.4-13.5
7	नीम	12.4-18.3	11.4-23.1	2.3-6.2	7.7-18.9
8	शहतूत	15.0-27.6	9.1-15.3	2.3-8.0	14.3-22.9
9	कचनार	10.7-15.9	25.3-33.0	1.3-3.9	6.3-12.3
10	बबूल	15.9-16.1	20.1-20.5	7.0-7.5	7.1-7.5

(पृष्ठ 10 का शेष)

6. यह शरीर में रक्त को गाढ़ा होने से रोकता है जिससे रक्त आसानी से रक्त वाहिनियों द्वारा पूरे शरीर में लाया और ले जाया जा सके।
7. यह रक्त वाहिनियों को आराम की स्थिति प्रदान करके उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित रखता है।
8. यह शरीर में बुरे कोलेस्ट्रॉल के आक्सीकरण को रोकता है। जिससे वह रक्त वाहिनियों में खून के प्रवाह में बाधा उत्पन्न न करे।
9. अर्जुन की छाल में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के फाइटोकैमिकल्स व अन्य एण्टीऑक्सीडेन्ट्स ह्रदय तथा शरीर के अन्य भागों से रक्त को लाने व ले जाने वाली रक्त वाहिनियों में खून का थक्का जमने से रोकते हैं जिससे अचानक हार्टअटैक, ब्रेन हैमरेज इत्यादि का खतरा कम हो जाता है।
10. यह शरीर में ग्लूकोज़ से ग्लाइकोजन तथा ग्लूकोज़ से ऊर्जा के निर्माण में सहायक एन्जाइम्स की कार्यविधि को बढ़ाता है जिससे रक्त में ग्लूकोज़ की मात्रा सामान्य बनी रहे। यह मधुमेह को भी नियन्त्रित करता है।
11. अर्जुन की छाल में पाये जाने वाले एण्टीऑक्सीडेन्ट्स शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे लीवर, गुर्दे, मस्तिष्क, आंखों की रेटिना, ह्रदय इत्यादि को फ्री रेडिकल्स के प्रभाव से बचाते हैं। ये शरीर में बनने वाली विभिन्न एण्टीऑक्सीडेन्ट्स जैसे कैटालेज, सुपर ऑक्साइड डिसम्यूटेज इत्यादि की कार्यक्षमता को भी बढ़ाते हैं।

विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्ति यदि अर्जुन की छाल व इससे बने पेय पदार्थों व अन्य खाद्य पदार्थों को प्रतिदिन अपने आहार में शामिल करते हैं तो वे ह्रदय के विभिन्न रोगों,व मधुमेह, कैंसर जैसे गम्भीर रोगों से अपने आपको मुक्त करके स्वस्थ, तनाव मुक्त व लम्बा जीवन जी सकते हैं।

मार्च मास के कृषि कार्य

फसलों में

गन्ना

गन्ने की पछेती किस्मों की कटाई इसी महीने समाप्त करें व नई फसल की बिजाई इस माह पूरी कर लें। उन्नत किस्में, सी ओ जे 64, सी ओ एच 56 व सी ओ एच 92 (अगेती), सी ओ 7717, सी ओ एस 8436, सी ओ एच 99 व सी ओ एच 119 (दर्मियानी), सी ओ एच 128, सी ओ 1148, सी ओ एस 767 व सी ओ एच 110 (पछेती) आदि ही बोएं। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा इसके बाद 6-8 जुताइयां देसी हल से करके सुहागा लगाएं। ज़मीन के नीचे सख्त सतह को तोड़ने के लिए बिजाई से पहले 1.5 × 1.5 मीटर की दूरी पर चिज़लर को 1.5 फुट गहराई पर 4 साल में एक बार ज़रूर चलाएं। इससे भूमि की भौतिक स्थिति में बहुत सुधार आता है। चिज़लर चलाने के बाद खेत की तैयारी के लिए 2 बार हैरो, 2 बार कल्टीवेटर चलाकर सुहागा लगाएं। एक एकड़ गन्ने की बिजाई के लिए 35-40 क्विंटल गन्ने, यानि लगभग 35,000 दो आंखों वाले टुकड़ों या 23000 तीन आंख वाले टुकड़ों की ज़रूरत होती है। अच्छे जमाव तथा कंडुआ के बीजगत संक्रमण के निवारण हेतु 0.25 प्रतिशत एमिसान या मेन्कोज़ेब (250 ग्राम/100 लीटर पानी) से बीज को 4-5 मिनट डुबोकर उपचार करके ही बोएं। बिजाई दो खूडों में फासला लगभग 60 से 75 सैं.मी. व गहराई 7.5 सैं.मी. रखकर करें। पोरी के 1/4 भाग को दूसरी पोरी पर चढ़ाकर बोएं व बिजाई करने के बाद सारे खेत में सुहागा लगाएं। गन्ने के जमाव को बढ़ाने के लिए आधा सूखा खूड्ड सिंचाई विधि या गड्ढा (पिट) विधि द्वारा भी गन्ने की बिजाई की जा सकती है। दोपहर के समय बिजाई न करें। अच्छे जमाव के लिए बीज गन्ने के 2/3 ऊपरी भाग से ही लेना चाहिए। खरपतवारों की रोकथाम के लिए अट्राजीन 50 घुलनशील पाऊडर 1.6 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 2-3 दिन बाद 250-300 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें। एकीकृत खरपतवार नियंत्रण हेतु बिजाई के 35-40 दिन बाद एक गुड़ाई करके दूसरी सिंचाई के बाद नमी में 1.6 किलोग्राम प्रति एकड़ अट्राजीन का छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण करने के लिए 1.0 कि.ग्रा. 2,4-डी (80% सोडियम नमक) 250 लीटर पानी में बिजाई के 7-8 सप्ताह बाद प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि फसल में मोथा (डीला) घास की समस्या हो तो घास उगने पर 2,4-डी (इस्टर) का 400 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। 2,4-डी मोथा घास को ऊपर से ही नष्ट करती है इसलिए घास के दोबारा उगने पर छिड़काव को दोहराएं। मोथा (डीला) घास के नियंत्रण के लिए सैम्प्रा (75% हैलोसल्फ्यूरॉन) का 36 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 35-45 दिन बाद (पहली सिंचाई के 2-3 दिन बाद) जब मोथा घास 3-5 पत्ती की हो तब फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग करें।

कम लागत से अधिक पैदावार प्राप्त करने तथा पूरा लाभ लेने के लिए गन्ना बोने से पहले मिट्टी का परीक्षण कराएं। सामान्यत: 15-20 गाड़ी गोबर की अच्छी प्रकार गली-सड़ी खाद बिजाई से 20-25 दिन पहले डालें। खाद को पूरे खेत में समान रूप से बिखेर कर मिट्टी की ऊपरी तह में मिला दें। यदि खाद कच्ची हो तो 20-25 किलोग्राम यूरिया/एकड़ भी बिखेर दें और हल्की सिंचाई कर दें। बिजाई के समय पोरियों के नीचे 20 किलोग्राम नाइट्रोजन (45 किलोग्राम यूरिया खाद) व 20 किलोग्राम फास्फोरस (125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट या 45 किलोग्राम डी ए पी)/एकड़ डालें। रेतीली तथा कल्लर भूमि में 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी प्रति एकड़ बिजाई के समय अवश्य प्रयोग करें। यदि ज़मीन में प्राप्य पोटाश कम हो तो 35 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश/एकड़ भी डालें। गन्ने की मोढ़ी में 65 कि.ग्रा. यूरिया/एकड़ छिट्टा करके पानी दें।

बिजाई के लिए कीटग्रस्त पोरियां न लें। फसल उगते समय दीमक पोरी की आंखों को नष्ट कर देती है। कनसुए के आक्रमण से पौधों की गोभ सूख जाती है। अत: इन दोनों कीटों से फसल को बचाने के लिए बिजाई के समय 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या 600 मि.ली. फिप्रोलिन (रीजेन्ट) 5 एस.सी. को 600 से 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खूडों में बीज के ऊपर फव्वारे से डालें। 150 मि.ली. इमिडाकलोप्रिड (कान्फीडोर) 200 एस. एल. को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर भी नैपसैक पंप द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

गेहूँ और जौ

इस समय फसलें दूधिया अवस्था में होती हैं। अत: इनकी सिंचाई करनी आवश्यक है। अगर खेत में कुछ पौधे मूल किस्म के पौधों से भिन्न दिखाई दें तो उनको बीज की शुद्धता के लिए निकाल दें। खुली कांगियारी से ग्रसित गेहूं की बालियों को देखते ही खेत से सावधानीपूर्वक लिफाफे से ढककर निकाल दें तथा इसे खेत से बाहर ले जाकर मिट्टी में गहरे दबाकर नष्ट करें या जला दें। बालियां निकालते समय पौधे अधिक नहीं हिलाने चाहिएं क्योंकि इससे फफूंदीकण बिखर जाते हैं।

तकनीकी सहायता :

एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
अश्वनी कुमार, संकाय सलाहकार (बागवानी)
तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

इस महीने गेहूं की पत्तियों के पीलेपन के कई कारण हो सकते हैं। ज़मीन में देर तक पानी खड़ा रहने, अधिक सर्दी या ज़मीन में कंकर होने या फास्फोरस या ज़िंक की कमी के कारण भी पीलापन हो सकता है। अगली फसल में प्रति एकड़ 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट और फसल की आवश्यकतानुसार फास्फोरस की खाद डालें।

जिन स्थानों में पत्तों की कांगियारी (फ्लैग स्मट) देखें उन पौधों को काटकर, जलाकर नष्ट कर दें।

किसी-किसी वर्ष जौ व गेहूं में अल (चेपा या माहू) का आक्रमण हो जाता है। इस कीट से फसल को बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सूरजमुखी

बिजाई के 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करें। सूरजमुखी में 24 किलोग्राम नाइट्रोजन व 16 किलोग्राम फास्फोरस उन्नत किस्मों में एवं 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (90 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 20 (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) किलोग्राम फास्फोरस संकर किस्म के लिए प्रति एकड़ प्रयोग करें। नाइट्रोजन बिजाई व पहली सिंचाई पर बराबर मात्रा में डालें। फास्फोरस बिजाई के समय पोरा करें।

कटुआ सूण्डी या हरे रंग की सूण्डी का आक्रमण हो तो 10 कि.ग्रा. फैनवालरेट 0.4 प्रतिशत प्रति एकड़ धूड़ें या 80 मि.ली. फैनवलरेट 20 ई. सी. या 50 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 100-150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सरसों व राया

बिना पकी फसल में औसत 10 प्रतिशत या इससे अधिक पौधों पर (चेपा या माहू) का आक्रमण हो तो 400 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

सफेद रतुआ तथा मृदुरोमिल रोगग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें। पछेती बीजी गई फसलों पर आल्टरनेरिया ब्लाईट, डाऊनी मिल्ड्यू और सफेद रतुआ के उपचार के लिए 600-800 ग्राम डाइथेन या इण्डोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें। ज़रूरत अनुसार छिड़काव 2-3 बार 15 दिनों के अंतर पर दोहराएं।

चना

वर्षा के अभाव में चने में फल आने के बाद सिंचाई करें। चने में टाट वाली सूण्डी लगने पर 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 400 ग्राम कार्बेरिल 50 घु. पा. या 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. या 80 मि.ली. फैनवलरेट 20 ई. सी. या 125 मि.ली. साइपरमैथरिन 10 ई.सी. या 50 मि.ली. साईपरमैथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 28 ई. सी. को 100 लीटर पानी में घोल बनाकर या 150 मि.ली. नोवालूरान 10 ई. सी. (रिमोन) 150 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। अथवा 10 कि.ग्रा. कार्बेरिल 5 प्रतिशत या क्विनलफॉस 1.5 प्रतिशत धूड़ा प्रति एकड़ धूड़ें। एक मीटर लंबे खूड में औसतन एक सूण्डी मिले तब ही कीटनाशक छिड़कें। ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन बाद इन्हीं में से किसी एक कीटनाशक का छिड़काव/भुरकाव पुनः करें। झुलसा रोग के लक्षण आते ही फसल पर 500 ग्राम डाइथेन या इण्डोफिल एम-45 का 250 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

कपास

पिछली कपास फसल के ठूंठों से हुए फुटाव को नष्ट करें क्योंकि इन पर विभिन्न प्रकार के कीड़े पनपते हैं। गर्मी के मौसम में मीलीबग भी इन पर शरण लेता है व संख्या-वृद्धि करता है।

कपास की फसल काटने से लेकर अगली फसल लेने तक, जहां भी सूण्डियां हों, उन्हें मारें ताकि आने वाली फसल में इनका कम प्रकोप हो। गुलाबी सूण्डी नवम्बर से मार्च तक कपास के बीजों में, छंटियों के साथ लगे टिण्डों या फिर घरों व मिलों में पड़े बीज में सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है व मार्च के बाद प्यूपा बनते हैं जिनसे पतंगे बन कर उड़ जाते हैं।

जो भी छंटियां मार्च के बाद जलाने के लिए रखनी हों उनको हर हालत में मार्च में ही झाड़ लें व जो भी टिण्डे, कचरा आदि झड़ जाएं उनको जला दें। यह काम अभियान के रूप में करें।

मार्च तक मिलों में प्रायः कपास में से बिनौले व रूई अलग कर लिए जाते हैं। इसलिए विस्तार कार्यकर्त्ताओं को मिलों में जाना चाहिए और जो भी कचरा बाकी बचा पड़ा हो उसे जलवा कर नष्ट करवाना चाहिए।

बरसीम व लूसर्न

चारे के लिए समय-समय पर इन फसलों की कटाई करते रहें। प्रत्येक कटाई के बाद फसल को पानी अवश्य दें। बरसीम की फसल से बीज लेने के लिए शुष्क क्षेत्रों में इसकी कटाई मार्च के पहले सप्ताह तथा नम क्षेत्रों में मार्च के तीसरे सप्ताह के बाद न करें। काशनी, बथुआ आदि खरपतवारों के पौधे हों तो उन्हें खेत से निकाल देना चाहिए। इससे बीज की शुद्धता बनी रहती है।

बैसाखी मूँग

खड़ी फसल की कटाई के तुरंत बाद एक सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार दो बार खेत की जुताई करके बैसाखी मूंग की बिजाई मार्च तक पूरी कर लें। मूंग की उन्नत किस्म एम एच 421, एम एच 318, सत्या, बसन्ती व मुस्कान की बिजाई की सिफारिश की जाती है। इस समय एक एकड़ की बिजाई के लिए 10-12 कि.ग्रा. बीज आवश्यक है। सिंचित क्षेत्रों में बिजाई पंक्तियों में लगभग 20-25 सैं.मी. का फासला रखकर करें। बीज की बिजाई से पहले मूंग को राइजोबियम टीके से उपचारित करें। बिजाई के समय 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 12 किलोग्राम यूरिया एक एकड़ में ड्रिल करें। यदि उपर्युक्त उर्वरक उपलब्ध न हों तो 35 किलोग्राम डी. ए. पी. का प्रयोग बिजाई के समय बीज के नीचे पोरा करें। सल्फर की आवश्यकता पूरी करने के लिए 200 किलोग्राम यानि 4 कट्टे जिप्सम/एकड़ भी प्रयोग करें।

नेपियर (हाथी घास)

नेपियर घास की रोपाई मार्च में पूरी कर लें। खेत की तैयारी करके उसमें प्रति एकड़ लगभग 20 गाड़ी गोबर या कम्पोस्ट खाद मिला दें। नेपियर घास की बिजाई के लिए नेपियर बाजरा संकर नं. 21 ही लगाएं। एक एकड़ के लिए 11,000 तने के टुकड़े (50 सैं.मी. लंबे, दो-तीन आंखों वाले) काफी होंगे। इन जड़ों या तनों के टुकड़ों को कतारों में ढाई फुट तथा टुकड़ों की आपस की दूरी दो फुट रखकर लगाएं। पहले से चली आ रही नेपियर (हाथी) घास की अच्छी तरह निराई-गुड़ाई करके लगभग आधा कट्टा यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें और समय पर सिंचाई करते रहें।

अरहर

मार्च से अरहर की बिजाई की जा सकती है। जहां पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहां अरहर की किस्म मानक, यू पी ए एस-120 व पारस लें। शुद्ध फसल में पंक्ति से पंक्ति (कतार) का फासला 40 सैं.मी. व मिश्रित फसल में 50 सैं.मी. रखकर बिजाई करें। बीच में एक पंक्ति मूंग की भी लेना लाभदायक रहता है। एक एकड़ के लिए अरहर का 5-6

किलोग्राम बीज डालें। बिजाई के समय बीज को राइजोबियम के टीके से उपचारित करें। बिजाई के समय 100 किलोग्राम सुपर फास्फेट एवं 12-17.5 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ बीज के नीचे ड्रिल करें। यदि सिंगल सुपर फास्फेट न मिले तो 35 किलोग्राम डी. ए. पी. प्रति एकड़ बीज के नीचे ड्रिल करें। इससे नाइट्रोजन तथा फास्फोरस दोनों की आवश्यकता पूरी हो जाएगी। दो कट्टे जिप्सम (100 किलोग्राम) प्रति एकड़ भी प्रयोग करें इससे सल्फर की आवश्यकता पूरी होगी।

गर्मी के चारे

इस माह में अगेते चारे के लिए बाजरा की कोई भी संकर किस्म (दूसरी पीढ़ी), ज्वार की किस्में हरियाणा चरी 136 (एच सी 136), हरियाणा चरी 171 (एच सी 171), स्वीट सूडान घास 59-3 (एस एस जी 59-3), हरियाणा चरी 308 (एच सी 308) व हरियाणा ज्वार 513 (एच जे 513), लोबिया की सी एस 88 व ग्वार की एच एफ जी 156 की बिजाई शुरू करके अप्रैल तक पूरी कर लें। खेत की अच्छी तरह तैयारी करके बाजरे के लिए 3-4 किलोग्राम, ग्वार के लिए लगभग 16 किलोग्राम, सूडान घास के लिए 10-14 किलोग्राम ज्वार के लिए 20 से 24 कि.ग्रा. व लोबिया के हरे चारे के लिए 16-20 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से तथा कतारों का फासला ज्वार हेतु 25 सैं.मी., बाजरा, ग्वार व लोबिया में 30 सैं.मी. रखकर पोरे से बिजाई करें। बाजरा, ज्वार व सूडान घास की बिजाई के समय 44 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। लोबिया के लिए लगभग 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट व 12 कि.ग्रा. यूरिया खाद बिजाई के समय बीज के नीचे प्रति एकड़ पोर दें। चारे के लिए बाजरे की किस्म का ध्यान अवश्य रखें। डाऊनी मिल्ड्यू अवरोधी किस्म ही चुनें।

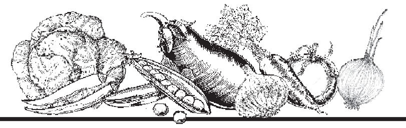

सब्जियों में

टमाटर

फरवरी में बसंतकालीन फसल की रोपाई के बाद अब फसल को निराई-गुड़ाई तथा सिंचाई की आवश्यकता पड़ेगी। सिंचाई लगभग आठ-दस दिनों के अंतर पर करें। रोपाई करने के लगभग तीन सप्ताह बाद 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से खड़ी फसल में टॉप ड्रैसिंग द्वारा दें। इस उर्वरक को देने के बाद सिंचाई अवश्य करें। फफूंद रोग से रक्षा के लिए रोगों से बचाव हेतु नियमित रूप से 600-800 ग्राम इण्डोफिल एम-45 को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत में 10-15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें। विषाणु रोग वाले पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें। हड्डा बीटल, हरा तेला व सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें। इससे विषाणु रोग भी नियंत्रण में किया जा सकता है।

बैंगन

रोपाई की गई बैंगन की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा निराई-गुड़ाई करें। मरी व सूखी हुई पौध के स्थान पर दोबारा पौध की रोपाई करें। पौधरोपण के लगभग तीन सप्ताह बाद खड़ी फसल में 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। यूरिया खाद देने के बाद सिंचाई अवश्य करें। नई फसल में रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। टहनियों के कीट ग्रसित भाग को तोड़कर नष्ट कर दें। फूल/फल लगने पर शाखा व फल छेदक तथा अन्य कीड़ों की रोकथाम के लिए नीचे लिखी (क) व (ख) भाग में से बारी-2 किसी एक कीटनाशक दवा को 200-250 लीटर पानी में मिला कर 15-20 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

(क) (i) फैनवेलरेट 20 ई.सी.-80 मि.ली.
(ii) साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी.-70 मि.ली.
(iii) डैल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी.-200 मि.ली.
(ख) (i) कार्बेरिल 50 डब्ल्यू. पी.-500 ग्रा.
(ii) स्पाइनोसेड 45 एस.सी.-75 ग्राम/80 लीटर पानी

मिर्च

ग्रीष्म ऋतु की फसल की रोपाई यदि फरवरी माह में की है तो उसके लगभग तीन सप्ताह बाद, 8 किलोग्राम नाइट्रोजन (18 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ की दर से दें। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करें। फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित समय से सिंचाई करें। मिर्च की फसल को विषाणु रोग व कीड़ों से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिन के अंतर पर एक एकड़ में लगी फसल पर छिड़काव करें।

मटर

मटर की पत्तियों में सुरंग बनाने वाले कीड़ों का प्रकोप होने पर 400 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मिथाइल डेमेटान 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। सफेद चूर्णी रोग के लक्षण दिखते ही 500 ग्राम सल्फैक्स या केराथेन 40 ई.सी. 80 मि.ली. प्रति एकड़ के हिसाब से 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। तैयार फलियों को तोड़कर बाज़ार में भेजें।

पत्तागोभी व गांठगोभी

फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा इस माह के अंत तक लगभग सभी फूलों/गांठों की कटाई कर लें।

प्याज़ व लहसुन

प्याज़ की फसल में थ्रिप्स (चूरड़ा) का आक्रमण हो तो 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 75 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 175 मि.ली. डैल्टामैथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़कें। इसके साथ कोई चिपचिपाहट लाने वाला पदार्थ भी मिला लें जिससे कि घोल भली प्रकार पौधों पर चिपक सके।

मूली

गर्मी में मूली की बिजाई की जा सकती है। इस समय केवल 'पूसा चेतकी' किस्म को ही प्रयोग में लाएं। उचित होगा कि दोमट मिट्टी में छोटी-छोटी डोलियों पर ही इसकी बिजाई करें। डोलियों में 30 से 45 सैं. मी. की दूरी रखें।

पालक

गर्मी की फसल की बिजाई, यदि न की हो तो, अभी भी की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 8 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जोबनेर ग्रीन, आल ग्रीन या एच एस 23 किस्मों को प्रयोग में लाएं। तैयार खेत में बिजाई 15-20 सैं.मी. की दूरी पर कतारों में करें।

भिण्डी

भिण्डी की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। पूसा सावनी, हिसार उन्नत, हिसार नवीन, एच बी एच 142 व वर्षा उपहार किस्मों का बीज प्रयोग में लें। एक एकड़ के लिए 16–18 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जड़ गलन से बचाव के लिए बोने से पहले बीज को कारबेंडाज़िम (दो ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) नामक फफूंद नाशक दवा से उपचारित करें।

यदि भिण्डी की बिजाई फरवरी माह में की है तो फसल की उचित सिंचाई व निराई–गुड़ाई करें तथा लगभग 30 कि.ग्रा. यूरिया खाद (14 कि.ग्रा. नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से बिजाई के लगभग एक महीने के बाद दें। किसान खाद देने के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। तापमान के बढ़ने के साथ ही चित्तीदार तना व फलबेधक सूण्डी की रोकथाम के लिए 400–500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 400–500 ग्राम कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. को 250–300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

तरबूज व खरबूजा

फसल की निराई–गुड़ाई करें तथा उचित सिंचाई का प्रबंध करें। बिजाई के लगभग एक माह के बाद 15 कि.ग्रा. यूरिया खाद (7 किलोग्राम नाइट्रोजन) प्रति एकड़ की दर से खड़ी फसल में दें तथा सिंचाई करें। कद्दू जाति की सब्जियों में लाल भूण्डी (लालड़ी) का प्रकोप इस महीने में बहुत अधिक होता है। इसके नियंत्रण के लिए 5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 5 डी. को 5 कि.ग्रा. राख में मिला कर प्रति एकड़ धूड़ा करें। इसके अतिरिक्त 25 मि. ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 100 ग्रा. कार्बेरिल 50 घु.पा. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल में छिड़काव भी किया जा सकता है।

इस कीट की लटों (ग्रब्स), जो जड़ों को खाकर नुकसान पहुंचाती हैं, की रोकथाम के लिए 1.6 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को सिंचाई के साथ लगाएं। तरबूज की फसल में 2 व 4 सच्ची पत्ती की अवस्था में जिबरैलिक एसिड 25 पी.पी.एम. के घोल का छिड़काव करने से प्रति एकड़ कुल उपज में बढ़ोत्तरी होती है। खरबूजे की फसल में भी 2 व 4 सच्ची पत्ती की अवस्थाओं में एथरिल 100 पी.पी.एम. घोल के छिड़काव द्वारा कुल उपज में बढ़ोत्तरी पाई गई है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की बिजाई इस माह में की जा सकती है।

अरबी

अरबी की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 320–400 किलोग्राम गांठों की आवश्यकता होती है। यदि बिजाई फरवरी माह में कर दी है तो फसल की निराई–गुड़ाई करें। खरपतवार निकालें तथा सिंचाई करें।

अन्य सब्जियां

ग्वार और लोबिया की बिजाई इस माह में भी की जा सकती है। शकरकन्दी की यदि खेती करनी हो तो इसकी बेलों (काट) का प्रबंध करें। शकरकन्दी की काट रोपण का मुख्य समय अप्रैल से जुलाई होता है। बेलें उगाने के लिए इनके कन्दों को फरवरी से अप्रैल के महीनों में बीजना चाहिए।

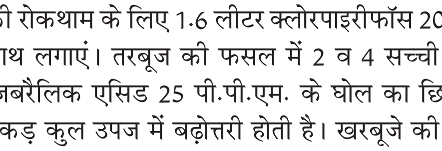

फलों में

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

अगर अब तक सदाबहार एवं पतझड़ के फलदार नए पौधे नहीं लगाए हों तो दूसरे सप्ताह तक मिट्टी के साथ लगा सकते हैं। लगाए गए पौधों में हल्की सिंचाई अवश्य करें। अगर हो सके तो हर सिंचाई के बाद निराई–गुड़ाई करें ताकि घास–फूस न होने पाए। बड़े पौधों में भी सिंचाई 10 दिन के अंतराल पर अवश्य करें ताकि पानी की कमी से फूल–फल न झड़ें। जट्टी–खट्टी के पौधों की टी (T) तरीके से नर्सरी में प्योंद तैयार करें। अगर नए पौधे में जस्ते, व (कॉपर) की कमी दिखाई देती हो तो 500 ग्राम ज़िंक सल्फेट, 2 किलोग्राम कॉपर सल्फेट और 1–2 किलोग्राम यूरिया 100 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करें।

यदि तेला, सिल्ला, पत्ती सुरंगी कीड़ा या सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 750 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या 625 मि.ली. रोगोर 30 ई. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

आम

आम के पौधों में सिंचाई 8–10 दिन के अंतर पर अवश्य करें। इस तरह से नए बने फल कम झड़ेंगे। अगर पिछले महीने उर्वरक न डाले हों तो इस महीने के पहले सप्ताह तक अवश्य डालकर सिंचाई कर दें। अगर पत्तों में नाइट्रोजन की कमी दिखाई देती हो तो इस माह के आखिरी सप्ताह में 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करें। ऐसा करने से छोटे बचे फल नहीं झड़ पाएंगे।

छाल खाने वाली सूण्डियां तनों में सुराख करती हैं। इनके नियंत्रण के लिए रूई के फोहों को दवा के घोल में डुबोकर किसी धातु के तार की सहायता से कीटों के प्रत्येक सुराख के अंदर डाल दें। इसके लिए एक लीटर पानी में 40 मि.ली. मैटासिड 50 ई.सी. दवा मिलाकर घोल बनाएं।

तेले की रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 1.5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 घु.पा. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। गोभ छेदक कीट पेड़ की नई कोंपलों में छेद करता है जिससे वे सूख जाती हैं। इसलिए सूखी टहनियों को तोड़कर जला दें तथा नई कोंपलों पर 250 मि.ली. मिथाईल पैराथियान (मैटासिड) 50 ई.सी. या 125 मि. ली. डाईक्लोरवास (नूवान) या 400 मि.ली. रोगोर या 1.0 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 घु. पा. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें। आम में ब्लैक टिप (काला सिरा) रोग की रोकथाम के लिए बोरेक्स (0.6%) के 2 छिड़काव फूल आने से पहले करें। तीसरा छिड़काव फल बनने के बाद 0.3 प्रतिशत कॉपरऑक्साईड का करें। बाग में पानी की निकासी ठीक रखें ताकि ज़्यादा नमी न रहे।

अंगूर

पिछले साल लगाई गई नई बेलों की सिंचाई अच्छी तरह से करें। बेलों में थोड़ी–2 खाद 25–30 ग्राम यूरिया खाद प्रति पेड़ डालते रहें और सिंचाई भी महीने में कम से कम तीन बार करें और पुरानी बेलों में सिंचाई दो बार अवश्य करें। इस माह के आखिरी सप्ताह में सिंचाई आवश्यक है। बेलों की जाल पर सिधाई ठीक ढंग से करें।

अंगूर का थ्रिप्स (चूरड़ा) भूरे रंग के पतले लंबे कीट होते हैं जो पत्तों से रस चूसते हैं तथा नए निकल रहे पत्तों को कमज़ोर बना देते हैं। इसके भारी आक्रमण से पत्ते लाल पड़ जाते हैं तथा सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बालों वाली सूण्डियां बड़ी तेज़ी से पत्तों को खाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए छोटी सूण्डियों को यांत्रिक विधि से नष्ट करें। इसके बाद यदि

आवश्यकता हो तो 500 लीटर पानी में 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई. सी. घोल कर एक एकड़ में छिड़काव करें।

आड़ू व अलूचा

नए लगाए गए पौधों की सिंचाई अच्छी तरह से करें। 8-10 दिन के अंतर पर सिंचाई करें और आधी नाइट्रोजन खाद की बची मात्रा इस माह के अंत तक अवश्य डाल दें। इन फलों पर अल या चेपा लगने पर पत्ते मुड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ई. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ पेड़ों पर नए फुटाव से पहले छिड़कें। जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब दूसरा छिड़काव करें। रेतीली मिट्टी में गर्मी में प्रायः अलूचा में जस्ते की कमी देखी गई है। जिसे 3 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट व 1.5 किलोग्राम चूना 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने पर ठीक किया जा सकता है।

अमरूद

वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिए पौधों में पानी एक सप्ताह के अंतराल पर लगाएं। थ्रिप्स (चूरड़ा) अमरूद के पत्तों पर भी काफी लगता है। जैसा अंगूर में बताया गया है उसी प्रकार इसका नियंत्रण करें।

बेर

पछेती किस्मों की इस माह के पहले सप्ताह में सिंचाई की जा सकती है। फल तोड़ने से पहले सिंचाई बंद कर दें। पके फलों को तोड़कर मण्डी में भेजने का प्रबंध करें। पौधों को दीमक से बचाने के लिए 1 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई करते समय डालें।

अन्य फल

सिंचाई हर 8-10 दिन के बाद अवश्य करें। जुलाई-अगस्त में लगाए जाने वाले पौधों के लिए ज़मीन की उपयुक्तता जानने के लिए मिट्टी के नमूने लेकर मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में भेजें। खाली ज़मीन को निशानदेही के लिए तैयार करवा लें। पपीते के पौधों को तैयार करने के लिए नर्सरी की बिजाई इसी माह में पूरी करें। 120 ग्राम बीज को केप्टान से उपचारित करके नर्सरी में लगाएं। यह नर्सरी एक एकड़ के लिए पर्याप्त है।

नोट : पानी की कमी को देखते हुए सिंचाई ठीक ढंग से करें। हर सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करें। ज़मीन से नमी न उडने दें। गोड़ाई करने के बाद सरसों का तूड़ा या घास-फूस (मल्चिंग मैटीरियल) ज़मीन पर बखेर दें। इससे ज़मीन से पानी नहीं उड़ेगा।

पशुओं में

गाय-भैंस

ग्रीष्म काल की शुरुआत होने वाली है, अतः पशु आवास में उचित प्रबंधन करें।

दिन के गर्मी के तापमान और रात के तापमान से पशुओं को ज़्यादा नुकसान होता है, अतः मार्च मास में भी रात्रि में पशु-आवास में उचित प्रबंध रखें।

यदि सूखी तूड़ी नई हो तो, यह पशु चारे में पुरानी तूड़ी के साथ मिश्रित करके इस्तेमाल करें। एकदम नई तूड़ी या सूखा चारा बदलाव से पशुओं में बंधा पड़ सकता है।

मौसम बदलाव के साथ-साथ बीमारियों का प्रकोप बढ़ सकता है। विशेषकर परजीवी जनित व सांस की बीमारियां (गलघोंटू इत्यादि)। अतः पशु-चिकित्सक से सम्पर्क कर गलघोंटू, मुँह-खुर इत्यादि के टीकाकरण ज़रूर करें। नए खरीदे पशुओं का पशु-चिकित्सक से विशेष रूप से टीकाकरण करवाएं।

इस माह में परजीवी (चीचड़, मक्खी, मच्छर आदि) का प्रकोप बढ़ सकता है, अतः पशुशाला में इनके बचाव के प्रावधान करें जैसे कि पशुशाला में पानी, कीचड़ का जमाव न होने देना, मच्छरदानी का प्रयोग करना, पशुओं पर खरहरा मारना, नियमित रूप से साफ-सफाई करवाना इत्यादि।

पशुपालक मक्खी-मच्छर से बचाव के लिए कीटनाशक दवाओं के साथ-साथ नीम का तेल का प्रयोग पशु-शरीर पर कर सकते हैं। पशुपालक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करते समय सावधानी बरतें, छिड़काव करते समय शरीर (आँख-नाक, हाथ-पैर आदि) ढक कर रखें। छिड़काव से पहले सदैव पशुओं को पानी पिला लें अन्यथा पशु दवा चाट सकता है, पशु-शरीर के साथ-साथ पशुशाला के फर्श व दीवारों (कम से कम 4 फीट तक) पर ज़रूर छिड़काव करें ताकि परजीवी के अण्डे भी समाप्त हों। कीटनाशक दवा कभी-भी तूड़ी-घर में न रखें।

पशुओं को हर साल ब्याने योग्य रहने के लिए अच्छे प्रजनन की आवश्यकता होती है जिसमें खनिज मिश्रण का महत्वपूर्ण योगदान है, अतः यह सुनिश्चित करें कि हर पशु को हर दिन खनिज-मिश्रण की उपलब्धता रहे।

भेड़-बकरियों को रात्रि समय में छत के नीचे ज़रूर रखें व इनमें फड़कीया और पी.पी.आर. आदि रोगों का टीकाकरण करवाएं।

हरे चारे (जई इत्यादि) का परिरक्षण साईलेज के रूप में करें।

यदि फरवरी में मक्का की बिजाई न की हो तो मार्च में करें।

घर-आंगन में

गृह विज्ञान

गर्म कपड़ों की मुरम्मत करके, धोकर या ड्राईक्लीन करवाकर उचित स्थान या संदूक में रखें।

गर्म कपड़ों को रखते समय उनमें फिनाइल की अच्छी किस्म की गोलियां रख दें या नीम की सूखी पत्तियां भी डाली जा सकती हैं।

फिनाइल की गोलियां संदूक में इधर-उधर नहीं बिखेरनी चाहिएं। 3-4 गोलियां छोटे से कपड़े में लपेट कर बराबर दूरी पर डाल देनी चाहिएं।

फल व सब्जियों को खाने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

प्रतिदिन स्नान करना चाहिए और नाखून, बाल व शरीर को साफ रखना चाहिए।

होली पर कांजी, नमकीन और मिठाइयां घर पर ही बनानी चाहिएं। क्योंकि घर पर बना सामान शुद्ध होने के कारण सर्वोत्तम माना जाता है।

मौसम के अनुसार अचार व चटनी भी घर पर ही बनानी चाहिए।

सहजन : पोषण से भरपूर चारे का एक विकल्प

✍ मिनाक्षी जाटाण, संदीप कुमार[1] एवं नवीन कुमार
कपास अनुसन्धान केंद्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सहजन एक बहुउद्देश्यीय झाड़ी/वृक्ष है जिसका वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलीफेरा है। यह तेज़ी से बढ़नेवाला तथा सूखा रोधक पेड़ है। भारत में यह आमतौर पर सहजन, मुगा, मुनगा, मूरिंगक्काई, मूरिंगक्काया, मुन्ननकाया, नग्गेकाई, सजाने, सरगावो, शेवागा, ड्रमस्टिक, घोड़ा मूली का पेड़ आदि के रूप में जाना जाता है। सहजन का पेड़ अपने बहुउपयोगी गुणों, व्यापक अनुकूलता और सरलता से स्थापित होने के कारण भी जाना जाता है। सहजन के पेड़ को पोषक तत्वों का उर्जा केंद्र कहा जाता है। सहजन की पत्तियां, फूल, फली, बीज और जड़ में बहुत पोषक तत्व, विटामिन ए तथा सी, आयरन और कैल्शियम आदि पाए जाते हैं तथा मनुष्य व पशुओं के लिए समान रूप से उपयोगी होते हैं। पेड़ का हर भाग खाद्य होता है। पत्तियों और नई डालियों को पशुओं द्वारा पसंद किया जाता है। सहजन किसी भी अन्य बारहमासी चारे की तरह पशुधन के लिए हरा चारा पैदा कर सकता है। इसलिए इसे पशुधन के लिए वैकल्पिक चारा माना जा सकता है।

चारे की पोषक रचना : सहजन अत्यधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट और गुणकारी वृक्ष है। इसकी पत्तियां प्रोटीन और पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं, इसलिए इसका इस्तेमाल दुधारू पशुओं और अन्य जानवरों के लिए चारे के रूप में किया जा सकता है। यह पशुओं के लिए वर्ष भर हरा चारा उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए जाना जाता है। सहजन की पत्तियां अन्य चारा फसलों के साथ मिश्रित करके पशुओं को खिलाने से चारे की गुणवत्ता बढ़ा देती हैं। प्रोटीन और खनिजों के अलावा यह प्रो-विटामिन ए, विटामिन बी, विटामिन सी और ई, कुछ कैरोटीनॉयड का भी बहुत अच्छा स्रोत है। दो से तीन महीने के अंतराल पर कटे हरे चारे में ड्राई मैटर (16.63 प्रतिशत), क्रूड प्रोटीन (15.82 प्रतिशत), ईथर अर्क (2.3 प्रतिशत), क्रूड फाइबर (35.54 प्रतिशत), कुल राख (7.61 प्रतिशत), सिलिका (1.02 प्रतिशत), कैल्शियम (0.8 प्रतिशत), फास्फोरस (0.28 प्रतिशत), मैग्नीशियम (0.51 प्रतिशत), पोटेशियम (1.43 प्रतिशत), सोडियम (0.24 प्रतिशत), कॉपर (8.78 पीपीएम), ज़िंक (18.05 पीपीएम), मैंगनीज़ (35.57 पीपीएम) और आयरन (474.25 पीपीएम) होता है।

किस्में : सहजन की बहुत सारी किस्में उपलब्ध हैं, इनमें से कुछ परिष्कृत और स्थानीय किस्में निम्न हैं - कोयम्बटूर 1, कोयम्बटूर 2, रोहित 1, पी.के.एम 1, पी.के.एम 2, धनराज, जाफना, याजपानम, पूना, पाल, कोडीकल और चावाकेचेरी मोरिंगा आदि। धनराज, केडीएम 1, पीकेएम 1 और पीकेएम 2 को चारे की खेती के लिए उगाया जा सकता है।

मिट्टी और वातावरण : सहजन कम से कम पानी में भी जिंदा रह सकता है। कम गुणवत्ता वाली मिट्टी में भी ये पौधा लग जाता है। इसकी वृद्धि के लिए गर्म और नमीयुक्त जलवायु और फूल खिलने के लिए सूखा मौसम सटीक है। सहजन के फूल खिलने के लिए 25 से 30 डिग्री तापमान अनुकूल है। सहजन की पैदावार के लिए चिकनी बलुआ मिट्टी जिसमें जल भराव नहीं हो तथा रेतीली बलुआ मिट्टी (जिसमें 6.5 से 8.0 पीएच हो) उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : मिट्टी को नम रखने के लिए पहले सिंचाई की जाती है। खेत की तैयारी के समय 10 टन गोबर खाद या 3 टन केंचुआ खाद प्रति हैक्टेयर के हिसाब से डालकर खेत की गहरी जुताई की जाती है। उसके बाद 2-3 हैरो चलाकर भूमि समतल की जाती है।

रोपण : सहजन को बीज के साथ-साथ स्टेम कटिंग के माध्यम से भी उगाया जा सकता है। हालांकि, स्टेम कटिंग के साथ उत्पादित पौधों में एक गहरी जड़ प्रणाली नहीं होती और हवा और सूखे के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। कटिंग दीमक के हमलों के प्रति अधिक संवेदनशील है। चारे के उद्देश्य से सीधी बुवाई को प्राथमिकता दी जाती है। बीज को बुवाई से 10-12 घंटे पहले पानी में भिगोना आवश्यक है। सहजन की बुवाई सामान्यतया जून में पहली बारिश के बाद की जाती है। अधिक नमी और पानी में ठहराव के कारण अंकुर की क्षति को रोकने के लिए बरसात के मौसम के दौरान मोरिंगा की बुवाई से बचना चाहिए। मोरिंगा को वसंत और शरद ऋतु के मौसम में बोया जा सकता है क्योंकि यह अच्छा अंकुरण और रोपों की उचित स्थापना सुनिश्चित करता है। एक हैक्टेयर में 100 किलोग्राम मोरिंगा बीज बोना चाहिए। अच्छी तरह से तैयार खेत में 30 सेमी कतार से कतार की दूरी और 10 सेमी पौधे से पौधे की दूरी के हिसाब से 3-4 सेमी गहराई की मिट्टी में एक बीज बोएं। बुवाई के बाद बीज का मिट्टी के साथ ठीक से आवरण करें। मोरिंगा के बीज बोने के 12 से 15 दिन बाद अंकुरित होते हैं।

रासायनिक खाद और उर्वरक: आमतौर पर सहजन का पेड़ बिना ज़्यादा ऊर्वरक के ही अच्छी तरह से तैयार हो जाता है। सहजन की फसल को एक हैक्टेयर भूमि के लिए 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश, 30 कि.ग्रा. सल्फर और 10 किलोग्राम जस्ता सल्फेट की आवश्यकता होती है। सिंगल सुपर फास्फेट (एसएसपी) और अमोनियम सल्फेट का उपयोग फास्फोरस, नाइट्रोजन और सल्फर की आवश्यकताओं लिए किया जा सकता है। बुवाई से पहले 30 किलोग्राम नाइट्रोजन और अन्य रासायनिक उर्वरकों की पूरी खुराक मिट्टी में डालें। शेष बची नाइट्रोजन खुराक को बराबर विभाजन करें और रोपण के 45 दिनों के बाद व प्रत्येक कटाई पर डालें ।

सिंचाई : सहजन के पौधे को ज़्यादा पानी नहीं चाहिए। पूरी तरह से सूखे मौसम में शुरूआत के पहले दो महीने नियमित पानी चाहिए और उसके बाद तभी पानी डालना चाहिए जब इसे ज़रूरत हो।

हानिकारक कीट और रोग : सहजन अधिकांश कीटों से लड़ने की क्षमता रखता है। ज़्यादा पानी जमा होने की स्थिति में डिप्लोडिया रूट रॉट पैदा हो सकता है। पत्तों को खाने वाली इल्लियां तथा बालदार इल्लियां बारिश के मौसम में पाई जाती हैं जो पत्तियों को नष्ट कर देती हैं। मोनोक्रोटोफॉस का छिड़काव कीट से बचाता है।

कटाई : चारे के लिए सहजन की पहली कटाई बुवाई के 90 दिन बाद की जानी चाहिए। बाद की कटाई 55-60 दिन के अंतराल पर की जानी चाहिए। उत्तर भारत में, सर्दियों के मौसम में (15 दिसंबर से 15 मार्च के बीच), पत्तों की छंटाई के समय कोई कटाई नहीं की जाती है। उत्तर भारत में वर्ष में छह कटाई संभव है। एक बार लगाए जाने के बाद, मोरिंगा के पौधे से हरे बायोमास को 8-10 साल तक काटा जा सकता है।

उत्पादन : सघन रोपण से चारा उत्पादन में अपेक्षाकृत वृद्धि की जा सकती है। हरे चारे की उत्पादन लागत प्रति एकड़ तीन वर्षों के लिए लगभग एक लाख रुपये है। हरे चारे का 40 टन उत्पादन प्रति एकड़ प्रति वर्ष किया जा सकता है।

[1]चारा अनुभाग, अनुवांशिकी एवं पौद्य प्रजनन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

स्वच्छ भारत मिशन में : गृहिणी का योगदान

✍ आसमां, मंजु दहिया एवं सूबेसिंह[1]
विस्तार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हर मनुष्य की तीन बुनियादी आवश्यकताएं होती हैं- भोजन, कपड़ा और मकान। हमारी भारत सरकार ने एक नया व चौथा आयाम जोड़ा है -वह है : पूर्ण स्वच्छता। आस-पास फैली गंदगी मानव जीवन को बहुत प्रभावित करती हैं जैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यक्तिगत सुरक्षा, मानव गरिमा और पर्यावरण।

जैसा कि समझा जा रहा है स्वच्छता केवल मानव मल का प्रबन्धन नहीं है बल्कि यह एक व्यापक अवधारण है। स्वच्छता में सात घटक शामिल हैं: मानव अपशिष्ट का सही प्रबन्धन; स्वच्छ पीने का पानी का उपयोग और रख-रखाव; व्यक्तिगत स्वच्छता; ठोस कचरे का सुरक्षित प्रबन्धन; भोजन और घर की स्वच्छता; तरल अपशिष्ट का प्रबन्धन; एवं समुदाय की साफ-सफाई का सुरक्षित प्रबन्धन।

स्वच्छता सिर्फ शौचालय बनाने तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि यह एक बहुत बड़ा विषय है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 2 अक्तूबर, 2014 को राजघाट (नई दिल्ली) में महात्मा गांधी के जन्मदिन पर स्वच्छ भारत मिशन की शुरूआत की जिसे दो भागों में बांटा गया: स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) एवं स्वच्छ भारत मिशन (शहरी)

स्वच्छ भारत मिशन का मुख्य उद्देश्य : ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता व्यवस्था में सुधार; पंचायती राज संस्थाओं और समुदायों को व्यवहारिक स्वच्छता सुविधाओं और पद्धतियों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करना; पूरी तरह से खुले में शौच को बंद करवाना; पूर्ण स्वच्छता के लिए आर्थिक रूप से उपयोगी तथा सही तकनीकियों को बढ़ावा देना; शारीरिक स्केविंजग का उन्मूलन; एवं समुदायों में गैस अपशिष्ट प्रबंधन को बढ़ावा देना और स्वच्छता का जन स्वास्थ्य के साथ संबंध के बारे में जागरूकता पैदा करना है।

स्वच्छ भारत मिशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत, समूह और सामुदायिक शौचालयों का निर्माण करना तथा ग्राम पंचायतों की सहायता से गांवों को स्वच्छ बनाना और गांवों के हर घर में पानी का कनेक्शन करना है।

ग्रामीण तथा बाहरी स्वच्छ भारत मिशन को सफल बनाने में सिर्फ सरकार के प्रयास काफी नहीं हैं बल्कि हम सब को आगे आना होगा खासतौर पर महिलाओं की इसमें अहम भूमिका है क्योंकि महिलाएं एवं बच्चे ही इससे ज़्यादा प्रभावित होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में घर में शौचालय न होने के कारण महिलाओं को खुले में शौच के लिए जाना पड़ता है व ज़्यादातर महिलाएं वक्त पर शौच नहीं कर पाती हैं जिसके कारण उनका स्वास्थ्य प्रभावित होता है और उन्हें अनेक संक्रामक बीमारियों का सामना करना पड़ता है जैसे कि डायरिया व टायफाइड। सुरक्षा की दृष्टि से भी खुले में शौच जाना महिलाओं के लिए सुरक्षित नहीं हैं। अकेले में सुनसान जगह पर लड़कियां यौन शोषण की ज़्यादा शिकार बनती हैं। स्वच्छता अभियान महिलाओं की गरिमा को पुन:स्थापित करने में मददगार साबित हुआ है। इस अभियान में महिलाओं ने ग्रामीण ही नहीं बल्कि बाहरी क्षेत्रों में भी बहुत योगदान दिया है व आगे भी उन्हें इसमें बढ़-चढ़ कर प्रयास करने चाहिएं।

इसे सफल बनाने में महिलाओं द्वारा कर सकने योग्य कार्य हैं: रसोईघर में बचे हुए खाने, फल व सब्जियों के छिल्के आदि को एक गड्ढा बनाकर बचे हुए खाने को उसमें डालकर उसकी खाद बनाकर प्रयोग करें; गाय भैंस आदि में अपशिष्ट को केंचुए की खाद बनाने के लिए प्रयोग करें; ठोस तथा तरल अपशिष्ट के लिए अलग-अलग कूड़ेदान का प्रयोग करें; घर में सामान लाने, ले जाने के लिए कपड़े के थैले का प्रयोग करें; प्रयोग किया हुआ पानी घर के बाहर किचन गार्डन में सदुपयोग करें जिससे परिवार को ताज़ा सब्जियों की प्राप्ति होगी और पानी का सदुपयोग भी होगा; बच्चों में पर्यावरण व स्वयं की स्वच्छता के लिए जागरूकता पैदा करें; घर के अलावा अपने आस-पास गली मोहल्लों में भी सफाई का ध्यान रखें; पानी को व्यर्थ न बहाएं; एवं धुंआ रहित ईंधन का उपयोग करें।

[1]सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा), चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

पराली से बायोगैस का उत्पादन : एक प्रबल संभावित तकनीक

✍ यादविका, कमला मलिक[1] एवं वाई. के. यादव
अक्षय एवं जैव-ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में लगभग 43.95 मिलियन हैक्टेयर में धान की खेती की जाती है जिसमें उत्पादित चावल एवं भूसे का अनुपात 1:1.5 होता है। उत्पादित धान के भूसे के कुछ हिस्सों का उपयोग आधुनिक बायोमास पावर प्लांट, ईंट भट्टों, कार्डबोर्ड बनाने, मशरूम की खेती आदि के लिए किया जाता है एवं कुछ हिस्सों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू बायोमास कुकस्टोव के ईंधन के रूप में किया जाता है। कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई के कारण खेतों से सारा भूसा एकत्रित नहीं हो पाता है एवं इसके भंडारण से जुडी समस्या के कारण किसान इसे रुपये प्रति मीट्रिक टन की गैरकिफ़ायती कीमत पर बेच देते हैं अथवा लगभग दो तिहाई भूसे को खेतों में खुले तौर पर जला दिया जाता है ताकि खेत को तुरंत अगली गेहूं फसल की बुवाई के लिए तैयार किया जा सके।

धान की पराली जलाने से ग्रीन हाऊस गैसों का उत्पादन : शोधकर्त्ताओं का सुझाव है कि धान के भूसे के खुले मैदान में जलने से हानिकारक ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन में भारी योगदान होता है जिनमें पोलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाईड्रोकारबंस (PAHs), पोलीक्लोरीनेटि डाइबेनजो-पी-डाइऑक्सिन्स (PCDDs) एवं पोलिक्लोरीनेटेड डिबेंज़ोफ़ुरन्स (PCDFs) जिन्हें डाइऑक्साइड्स भी कहा जाता है। प्रयोगात्मक रूप से, यह मूल्यांकन किया गया है कि एक टन धान की पराली जलाने से 3 किलो कण पदार्थ, 60 किलो कार्बन मोनोआक्साईड, 1460 किलो कार्बन डाइआक्साईड, 199 किलो राख एवं 2 किलो सल्फर डाइआक्साईड उत्सर्जित होता है। स्थानीय रूप से पराली को जलाने से यह पर्यावरण को प्रभावित करता है क्यूंकि इन वायु प्रदूषकों में विषैले गुण होते हैं जोकि संभावित कैंसरजनित होते हैं। चूंकि नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होते हैं, धान के भूसे से जैव ऊर्जा उत्पादन का हरियाणा और पंजाब और भारत के अन्य उत्तरी राज्यों में व्यापक दायरा है।

धान की पराली का अवायवीय पाचन : बायोमास संसाधनों को संभालकर, ऊर्जा और जैव-उर्वरक का उत्पादन करने के लिए, अवायवीय पाचन तकनीक, ऊर्जा उत्पादन/इनपुट अनुपात के मामले में एक सबसे प्रभावी तरीका है। बायोमीथेनेशन उद्देश्यों के लिए धान की पराली को गांठ के रूप में संग्रहीत किया जा सकता है। इसके अलावा, धान की पुआल का आकार 3-5 मि.मी. के स्तर पर घटाने के लिए एक पुलावीकरण इकाई का उपयोग किया जा सकता है। धान के भूसे के निकटतम विश्लेषण से पता चला है कि धान के भूसे में 10.0 प्रतिशत नमी और 90.0 प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ जबकि 84.0 प्रतिशत और 16.0 प्रतिशत अस्थिर ठोस पदार्थ और राख पदार्थ होते हैं। अंतिम विश्लेषण के परिणामस्वरूप सूखे वज़न के आधार पर 40.00 प्रतिशत कार्बन, 5.50 प्रतिशत हाइड्रोजन और 0.75 प्रतिशत नाइट्रोजन होती हैं। मौलिक विश्लेषण पर, यह पाया गया है कि चावल की पराली बायोमास में मौजूद नाइट्रोजन की मात्रा बहुत कम है (C/N = 54.0)। धान के भूसे के रचनात्मक विश्लेषण में 39.90 प्रतिशत सेलूलोज़, 24.0 प्रतिशत हेमिसेल्यूलोज और 5.6 प्रतिशत लिग्निन का खुलासा हुआ। बायोमीथेनेशन की क्रिया अवायवीय पाचको में की जाती

[1]सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

है जहां पंप का उपयोग करके फ़ीडिंग इकाई के माध्यम से तैयार धान की की पराली के सब्सट्रेट को डायजेस्टर को फीड जाता है। इन बायोगैस संयंत्रों में कोई बाहरी तापीय स्रोत की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उत्तरी भारत का वार्षिक औसत तापमान मेसोफिलिक रेंज के भीतर है। डायजेस्टर में 8-10 प्रतिशत टीएस बनाए रखने के लिए लोडिंग दर की जा सकती है जबकि 30 दिनों के हाइड्रोलिक प्रतिधारण समय (एचआरटी) में डायजेस्टर को बनाए रखा जा सकता है। पाचित स्लरी को ठोस-तरल पृथक मशीन का उपयोग करके अलग किया जा सकता है। धान के भूसे से बायोमीथेन उत्पादन के विश्लेषण से पता चला कि ऊर्जा रूपांतरण का यह मार्ग उपलब्ध उपयोगी ऊर्जा और ग्लोबल वार्मिंग क्षमता के मामले में सबसे अधिक कुशल है। बिजली उत्पादन के आंकड़ों से पता चला है कि बायोमीथेन द्वारा 777.0 किलोवाट/टन धान की पराली का बिजली उत्पादन होता है जबकि आउटपुट/इनपुट ऊर्जा अनुपात 5.5 होती है।

बायोममीथेनेशन उसी धान की पराली से अतिरिक्त ऊर्जा लेने के साथ ही एक अतिरिक्त लाभ के रूप में टिकाऊ कृषि के लिए एक मूल्यवान खाद प्रदान करता है। विश्लेषण से पता चला कि धान के भूसे की बायोमीथेनेशन द्वारा नेट ग्लोबल वार्मिंग क्षमता में 2,750 किलो कार्बन डाइआक्साईड उत्सर्जन / टन कम कर देता है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि एनारोबिक पाचन मार्ग के माध्यम से बायोमीथेन उत्पादन के लिए धान के भूसे का उपयोग ऊर्जा और पर्यावरण अर्थशास्त्र के मामले में सबसे अच्छा तरीका है। विकेंद्रीकृत और केंद्रीकृत प्रणाली के वाणिज्यिक बायोगैस उत्पादन संयंत्रों को लॉजिस्टिक लागत कम करने के लिए गांवों के समूह स्तर पर उचित रूप से स्थापित किया जा सकता है। उपलब्ध ऊर्जा को खाना पकाने के साफ एवं हरे ईंधन के रूप में, बिजली उत्पादन के साथ-साथ वाहनों की आवश्यकता के आधार पर वाहन ईंधन अनुप्रयोगों की आपूर्ति के लिए उपयुक्त रूप से उपयोग किया जा सकता है।

सतत् विकास दृष्टिकोण : धान के भूसे प्रबंधन के लिए बायोगैस आधारित ऊर्जा समाधान स्थिरता के सभी मानदंडों पर खरा उतरता है। यह समाधान भी 'तकनीकी रूप से व्यवहार्य' और पर्यावरण अनुकूल है। वाणिज्यिक बायोगैस उत्पादन उद्योगों की स्थापना के माध्यम से धान के भूसे और अन्य फसल अवशेषों को खुले में जलाने से बचा जा सकता है। यह सब्सट्रेट के सड़ने के कारण हुई मीथेन उत्सर्जन को कम करता है। बायोगैस का उपयोग उर्वरक, कीटनाशकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम कर सकता है साथ में मिट्टी के स्वास्थ्य और क्षतिग्रस्त नमकीन उपजाऊ भूमि को पुनर्प्राप्त करने की क्षमता है। जैव उर्वरक फॉस्फेट निर्धारण समस्या पर काबू पाने में मदद कर सकते हैं। सरकार ने बिजली और उर्वरकों को भारी सब्सिडी दी है और बायोगैस संयंत्र के उत्पादों को सब्सिडी वाले मूल्य के साथ प्रतिस्पर्धा करना है। इसलिए, बायोगैस संयंत्र से निर्मित जैविक उर्वरक को फॉस्फेटिक रासायनिक उर्वरक के समान मूल्य पर रखा जा सकता है।

यह विदेशी मुद्रा बहिर्वाह को भी बचाएगा क्योंकि अधिकांश रासायनिक फॉस्फेट भारत में आयात किए जाते हैं। बायोगैस से उत्पादित बिजली को अलग-अलग कीमतों पर वापस किया जा सकता है। धान के भूसे से 300 घन मी/टन बायोगैस की वर्तमान उत्पादकता को और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए इस क्षेत्र में आगे के अनुसंधान और विकास के साथ सुधार किया जा सकता है। धान के भूसे से बायोगैस का उत्पादन इसलिए रोज़गार उत्पादन में सीधे और अप्रत्यक्ष रूप से मदद करेगा, जिसके कारण यह आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं बल्कि आकर्षक भी है।

बाधाएं : धान के भूसे से बायोगैस के उत्पादन में प्रमुख बाधा बायोगैस संयंत्र के जैविक खाद का प्रचार है।सरकारी विभाग, विशेष रूप से कृषि, विश्वविद्यालयों द्वारा प्रस्तावित फसलों के पैकेज एवं प्रैक्टिस में जैविक खाद के उपयोग का ज़िक्र नहीं किया जाता है। रासायनिक उर्वरकों के विपरीत, जैविक खाद तत्काल परिणाम नहीं दिखाता है लेकिन दीर्घकालिक महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। इसलिए, सरकार को इसे व्यवहार्य बनाने के लिए किसानों को अधिक प्रभावी तरीके से जागरूक करने के लिए पहल करनी चाहिए।

निष्कर्ष : धान के भूसे का जलाया जाना भारत में एक गंभीर चिंता का विषय है और नीति निर्माताओं और शोधकर्ताओं का ध्यान आकर्षित कर रही है। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह कहा जा सकता है कि लाभ दिए जाने पर, बायोगैस से उत्पन्न ऊर्जा की आपूर्ति ग्रामीण व्यवसायों और उद्यमों को बढ़ने और समृद्ध होने में सहायता करेगी, कार्बनिक उर्वरकों के उत्पादन और उपयोग से मिट्टी में सुधार होगा और उपज में वृद्धि होगी, और इससे स्थानीय नौकरी के अवसर पैदा करके रोज़गार उत्पादन में भी मदद मिलेगी (यह कहना एक संदिग्ध तथ्य नहीं होगा कि बायोगैस आधारित ऊर्जा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए टिकाऊ समाधान प्रदान कर सकती है। ऐसी परियोजनाओं के माध्यम से सब्सिडी बिलों और विदेशी मुद्रा बहिर्वाह में काफी बचत प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा, ईंधन और ऊर्जा की उपलब्धता के माध्यम से, इस क्षेत्र में समग्र स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार होगा, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह ग्रामीण समुदाय के 'सशक्तिकरण' का वादा करता है, जो इसे एक बहुगुणनीय और स्केलेबल मॉडल बनने के लिए उपयुक्त बनाता है।

पर्यावरण, ऊर्जा और कृषि क्षेत्रों पर उनके व्यापक पहुंचने वाले सकारात्मक प्रभाव के कारण, धान के भूसे आधारित बायोगैस संयंत्र एक नयी पहल के साथ टिकाऊ विकास के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जिससे किसानों और उद्योगों के बीच पारस्परिक लाभ के लिए लाभदायक भागीदारी बनाई जा सकती है।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

गन्ने की कटाई के उपरांत - ह्रास

✍ कनिका पंवार एवं रमेश कुमार
क्षेत्रीय अनुसन्धान केंद्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारतीय कृषि में गन्ना एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है तथा भारत में शर्करा उत्पादन का एक मात्र स्रोत गन्ने की फसल है जिसको कच्चे माल के रूप में प्रयोग करके चीनी, खांडसारी एवं गुड़ का उत्पादन किया जाता है। भारत में गन्ने की फसल को लगभग 50 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है। जिसका लगभग आधा भाग उपोष्ण क्षेत्र में उगाया जाता है। जो गन्ना एवं चीनी के उत्पादन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है परन्तु पैदावार एवं परता की दृष्टि से यह क्षेत्र भारत वर्ष के कई प्रदेशों से पीछे है।

उत्तरी भारत में गन्ना उत्पादन की गुणवत्ता कम होने का एक मुख्य कारण कटाई से पिराई के बीच का लम्बा समय है जो कि लगभग 3-7 दिन तक आंका गया है। कटाई से पिराई के बीच की लम्बी अवधि होने पर गन्ने में संचित सुक्रोस (चीनी) जैविक एवं जीवाणुओं द्वारा अन्य पदार्थों में विघटित होने लगती है जिससे गन्ना उत्पादों की गुणवत्ता में गिरावट होने लगती है। गन्ना काटने के बाद उस पर किसी प्रकार का जैविक नियंत्रण न होने से उसमें जैव-रासायनिक प्रक्रियाएं विपरीत दिशा में शुरू हो जाती हैं। निरंतर पानी का ह्रास होने से जैव उत्प्रेरक इन्वेर्टज अत्यधिक क्रियाशील होता है जिससे शर्करा विघटन प्रक्रिया बढ़ जाती है। गन्ने के कटे हुए सिरों पर जीवाणुओं का निरंतर आक्रमण होता रहता है। सुक्रोस एवं अन्य पदार्थ सभी प्रकार के जीवाणुओं का पोषण करते हैं और बहुत सारे जीवाणु गन्ने के अंदर प्रवेश कर जाते हैं तथा संचयित शर्करा का भक्षण शुरू कर देते हैं। इन जीवाणुओं में लैक्टो बेसिलस समूह के जीवाणु मुख्य रूप से शर्करा का ह्रास करते हैं तथा अन्य अनावश्यक पदार्थों को जैसे कि डेक्सट्रिन, कार्बोनिक अम्ल, अल्कोहल एवं दूसरे पॉलीसेकराइड को बनाते हैं जो चीनी मिल में शर्करा बनने की क्रिया को सभी स्तरों पर प्रभावित करते हैं। लुकोस्टॉक नाम का एक जीवाणु गन्ने की कटाई के समय मिट्टी से प्रवेश करता है तथा शर्करा को डेक्सट्रिन में बदलता है। शोध कार्यों द्वारा यह पाया गया है कि संचित शर्करा या कमर्शियल कैन शुगर पर गन्ने की कटाई के उपरांत पिराई में विलम्बन का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव तापमान एवं गन्ने की पिराई एवं भंडारण पर निर्भर करता है। गन्ना कटाई से पराई के मध्य में देरी होने से किसानों को आर्थिक हानि होती है तथा उत्पादन उद्योग भी प्रभावित होता है। क्योंकि इसके मुख्य प्रभाव, परतों में कमी, रस की मात्रा में कमी, हानिकारक पदार्थों का चीनी प्रक्रिया में हस्तक्षेप, गुणवत्ता में ह्रास व सफाई व्यवस्था में अवरोध है।

परीक्षण द्वारा कटाई उपरांत गन्ने में होने वाले जैव रासायनिक एवं जीवाणुओं द्वारा शर्करा के परिवर्तन को कम करने के लिए निम्नलिखित प्रयास करने चाहिएं :

क. गन्ने की कटाई एवं आपूर्ति में मध्यांतर को कम करना चाहिए। यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए की पूर्ण कटा हुआ गन्ना 48 घंटों के अंदर पिराई में चला जाये तथा हमेशा ही ताज़े गन्ने की आपूर्ति हो ताकि बैक्टीरिया सम्बंधित ह्रास न्यूनतम हो सके। उन जगहों में जहां जल भराव या जले हुए गन्ने या छोटे टुकड़े में गन्ना पिराई हेतु लगाया जाता है गन्ना 24-48 घंटों के अंदर पेरा जाना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 22 पर)

ऊनी कपड़ों की देखभाल : कैसे करें

✍ ज़ेबा जमाल एवं दिव्या सचान[1]
वस्त्र एवं परिधान अभिकल्पन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

यदि आपके पास ऊनी कपड़े हैं, तो आपको यह अवगत होना चाहिए कि इस कपड़े में बहुत आसानी से अपना आकार खोने की प्रवृत्ति है। अगर इसे देखभाल के बिना धोया जाता है, तो यह सिकुड़ सकता है। ऊन के प्राकृतिक गुणों के संरक्षण के लिए, इसे उचित देखभाल और रखरखाव की आवश्यकता होती है।

कई निर्माता ऊनी कपड़ों को हाथ धोने या मशीन से धोने की सलाह नहीं देते हैं। इसके बजाय, वे उन्हें सूखा साफ करने के लिए ज़ोर देते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, सभी कपड़ों के आइटम में देखभाल के निर्देश लेबल होते हैं। यदि लेबल स्पष्ट रूप से "ड्राई क्लीन ओनली" कहता है, तो हमेशा कपड़ों को एक पेशेवर ड्राई क्लीनर के पास ले जाएं। इसलिए, इससे पहले कि आप एक सफाई विधि चुनने का फैसला करें, निर्देशों को ठीक से पढ़ें।

मशीन से धोने के लिए

सबसे पहले यह सुनिश्चित करने के लिए लेबल की जांच करें कि आपके ऊनी कपड़ों को वॉशिंग मशीन में साफ किया जा सकता है। यह निर्धारित करने के लिए उस पर इंगित किए गए पानी के तापमान (40 डिग्री सेल्सियस) के साथ एक प्रतीक होना चाहिए।

- मशीन को एक छोटे चक्र एवं कोमल धोने पर प्रोग्राम करें, पानी का तापमान सेट करें, और मशीन को भरें।
- कपड़े के लिए विशेष रूप से अनुमोदित हल्के साबुन या तरल डिटर्जेंट का उपयोग करें।
- यदि आप एक पाऊडर डिटर्जेंट का उपयोग कर रहे हैं, तो सुनिश्चित करें कि यह कपड़े डालने से पहले मशीन में पूरी तरह से घुल जाए।
- एहतियात के तौर पर, मशीन के अंदर रखने से पहले कपड़ों को उल्टा कर दें। धोने से पहले उन्हें भिगोने की कोई आवश्यकता नहीं है।
- एक बार जब चक्र पूरा हो जाता है, तो आप उन्हें ड्रायर में सुखा सकते हैं। यह चरण केवल तभी किया जा सकता है जब लेबल अनुमति देता है।
- कपड़े सुखाने के लिए, उन्हें एक तौलिया रैक पर क्षैतिज रूप से बिछाएं और उन्हें छाया में रखें। उन्हें तार पे लटका कर न सुखाएं, कपड़े अपने मूल आकार को खोना शुरू कर सकते हैं।

हाथ से धोने के लिए

- जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है, लेबल को यह देखने के लिए जांचें कि क्या आपके ऊनी कपड़ों को हाथ से धोया जा सकता है। आप पानी की बाल्टी में डूबे हुए हाथ का प्रतीक पाएंगे। अब, जब भी हम हाथ से कपड़े धोते हैं, तो ज़्यादा ताक़त का उपयोग करने की आदत होती है ताकि गंदगी या ग्रीस को हटाया जा सके। हालांकि, ऊनी कपड़ों को कोमलता से धोना चाहिए।
- पानी की एक बाल्टी को गुनगुने पानी (मशीन वॉश के समान तापमान) के साथ भरें, तरल डिटर्जेंट डालें, कपड़ों को उल्टा करें, और उन्हें बाल्टी में डालें। उन्हें लगभग 3 - 4 मिनट के लिए छोड़ दें।

[1] कॉलेज ऑफ़ कम्युनिटी साइंस, असम एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी, जोरहाट

अब एक-एक करके, कपड़ों को धीरे से निचोड़ें, बिना रगड़े या खींचे।

एक बार साबुन निकल जाने के बाद, बाल्टी को ठंडे पानी से भरें और अंतिम बार कपड़ों को धीरे से निचोड़ें।

अतिरिक्त पानी को धीरे से निचोड़ें और साफ तौलिये पर अलग-अलग कपड़े बिछाएं।

तौलिये को कपड़ों के साथ रोल करें, और उन्हें लगभग 10 मिनट तक रहने दें। साफ तौलिए ऊनी कपड़ों से अतिरिक्त नमी को सोख लेंगे।

ऊनी कपड़ों को सीधे धूप में न सुखाएं क्योंकि इससे वह सिकुड़ सकते हैं।

इस्त्री

यह सुनिश्चित करने के लिए लेबल की जांच करें कि क्या आप कपड़े को आयरन कर सकते हैं या नहीं। लेबल पर एक लोहे का प्रतीक होगा।

ऊनी कपड़ों को इस्त्री करने के लिए, सुनिश्चित करें कि शुरुआत से पहले आप लोहे पर सेटिंग को समायोजित करें।

कपड़े इस्त्री करने से पहले पूरी तरह से सूखने चाहिएं।

इस्त्री बोर्ड पर कपड़ा रखें और उसके ऊपर एक पतला कपड़ा बिछाएं। ऊनी कपड़ों को इस्त्री करते समय यह सुरक्षा की एक अतिरिक्त परत है।

जब आप कपड़ों के ऊपर से इस्त्री को हिलाते हैं, तो उन पर दबाव न डालें। जितना हो सके कोमल रहें।

भंडारण

अपने ऊनी कपड़ों को अलमारी में लटकाने की गलती कभी न करें।

भंडारण के लिए, उन्हें हमेशा ठीक से मोड़ें और उन्हें एक कैबिनेट या बक्से में रखें, या उन्हें एक शेल्फ पर रखें जो दीवारों के संपर्क में नहीं आते हैं।

ऊनी कपड़ों को स्टोर करते समय हमेशा मोथ बॉल्स और देवदार चिप्स डालें । यह कीड़े को मार देगा ।

(पृष्ठ 21 का शेष)

ख. पिराई हेतु लाया गया गन्ना पूर्ण रूप से साफ होना चाहिए, गन्ने की पत्तियां या मिट्टी और जड़ें न हों। जिन मीलों की आपूर्ति व्यवस्था में देरी होती हो अथवा पेराई क्षमता कम हो वहां पर उपयुक्त प्रजाति का चुनाव आवश्यक है जिनमें से मोम स्तर का होना, ऊपर की परत का मोटा होना मुख्य हैं।

ग. गन्ना जब अपनी पूर्ण परिपक्व अवस्था में होता है तो उसमें चीनी की मात्रा अधिक होती है। कटाई पूर्ण परिपक्वता सर्वेक्षण के बाद ही गन्ने की कटाई एवं पिराई का कार्य शुरू करें।

घ. गन्ने का परिवहन और भण्डारण भी सही करना ज़रूरी है।

यदि पिराई में अवांछनीय देरी हो या इसकी संभावना हो तो गन्ने को छोटे-छोटे ढेरों में इस तरह रखना चाहिए कि ज़मीन से स्पर्श कम हो। यदि संभव हो तो समय-समय पर जीवाणु नाशक घोल का छिड़काव करें। यह छिड़काव कटे हुए सिरों पर विशेष रूप से होना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस तरह से रखा गया गन्ना पूर्णतया साफ जगह जहां गोबर इत्यादि का संचय न हो और हवा का संचरण हो, रखना चाहिए।

पराली की समस्या एवं निपटने की नयी पहल

संजय, डी. पी. मलिक एवं स्वामी एच. एम.
कृषि अर्थशास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा एक कृषि प्रधान राज्य है जो कि 44.2 लाख हैक्टेयर में फैला हुआ है और इसके 80 प्रतिशत हिस्से पर खेती की जाती है। इसके सिंचित इलाकों में मुख्य तौर पर गेहूं-चावल का फसल चक्र अपनाया जाता है। साल 2017 में यहां चावल की खेती 13.1 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में की गयी जिससे 39.7 लाख टन उत्पादन मिला। यहां चावल की फसल मुख्यत: उत्तरी और उत्तर पूर्वी ज़िलों में ली जाती है। सिंचाई के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ने के साथ-साथ चावल उत्पादन का दायरा भी साल दर साल बढ़ता जा रहा है। हरियाणा में बासमती (बासमती-370, बासमती-386, तरावडी, रणबीर, पूसा-1509, पूसा बासमती-1121) एवं गैर बासमती (पी आर-111, पी आर-114, पूसा-44) दो प्रकार की चावल की किस्में बोई जाती हैं।

चावल की कटाई दो तरीकों से की जाती है, हाथ या कंबाइन। हाथों से कटाई का तरीका सिर्फ बासमती चावल के लिए इस्तेमाल किया जाता है और कंबाइन की मदद से दोनों किस्मों की कटाई की जाती है। मज़दूरों की घटती उपलब्धता एवं बढ़ती मज़दूरी दर तथा कंबाइन की कार्यकुशलता और सस्ते होने के कारण साल दर साल मशीनी कटाई का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। आमतौर पर बासमती चावल की पराली या तो घर पर पशु चारे के तौर पर इस्तेमाल कर ली जाती है या फिर 1500 से 4000 रु. प्रति एकड़ के भाव से पशु चारे के व्यापारियों को बेच दी जाती है जिससे कि किसान का कटाई एवं कढ़ाई का खर्च (3500-4000 रु. प्रति एकड़) निकल जाता है। गैर बासमती चावल की पराली में राख एवं सिलिका की मात्रा ज़्यादा होने के कारण इसका इस्तेमाल पशु चारे के रूप में नहीं किया जा सकता है और इसी वजह से इसका कोई खरीददार आज के वक्त में नहीं है। तालिक 1 में हकृवि द्वारा इजाद की गयी विभिन्न तकनीकों से पराली का नियोजन किया जा सकता है।

हालांकि पराली के नियोजन के बहुत से उपाय बताये गए हैं लेकिन फिर भी किसान आज के वक्त में इसे निम्नलिखित कारणों की वजह से इसे जलाने के लिए मज़बूर है:

1. बासमती चावल की फसल लम्बी अवधि की होने के कारण कंबाइन से उसकी कटाई के पश्चात गेहूं की बुवाई के लिए किसान को केवल 15-20 दिन का समय ही मिलता है।
2. पराली नियोजन के सभी उपाय किसान के ऊपर अतिरिक्त आर्थिक बोझ डालते हैं।
3. विभिन्न पराली नियोजन तकनीकों के लिए महंगी मशीनों की आवश्यकता होती है जो कि एक मध्य या छोटा किसान नहीं खरीद सकता। यहां तक कि बड़े किसान भी इन मशीनों को खरीदने में कोई उत्सुकता नहीं दिखाते क्यूंकि यह आम धारणा हैं कि इसके खर्च के

तालिका 1: पराली प्रबंधन के उपाय एवं खर्च

तकनीक	इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरण	खर्च (रु.प्रति हैक्टेयर)
इन सीटू (मल्च)	कटर/श्रेडर, मल्चरर	5500
इन सीटू (खेत में मिलाना)	स्ट्रॉ चॉपर, मिट्टी पल्टू हल, हैप्पी सीडर	3800
बेलिंग (गांठ बनाना)	कटर/श्रेडर, हे रेक, बेलर	4000

स्त्रोत: कृषि वानिकी एवं तकनीकी महाविद्यालय, हकृवि।

(शेष पृष्ठ 28 पर)

खाली समय में थ्रैशर का रखरखाव

प्रमोद शर्मा, कनिष्क वर्मा एवं नरेंदर[1]
अक्षय एवं जैव-ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

थ्रैशर का उपयोग फसल कटाई के समय केवल एक से दो महीने ही होता है उसके उपरांत थ्रैशर को किसी सुरक्षित स्थान पर रख देना चाहिए ताकि इसके पुर्ज़े मौसम और पानी से खराब न हों। इस बारे में निम्न अनुदेशों का पालन करना चाहिए:

- थ्रेशिंग उपरांत थ्रैशर को खाली चलाना चाहिए जिससे उसमें बचे हुए फसलों के डंठल और दाने बाहर निकल जाएं।
- थ्रैशर को शक्ति स्रोत से खोलकर अलग कर देना चाहिए। छलनियों से सारा भूसा, डंठल और दाने निकाल लेने चाहिएं। संभव हो तो पंखे के रास्ते को – जिससे हवा खींची या बाहर फेंकी जाती है – साफ कर लें।
- सभी रबड़ की बेल्ट, पट्टे इत्यादि को निकाल देना चाहिए और टैग लगाकर ऐसे सुरक्षित स्थान पर रख लेना चाहिए जहां गर्मी, बरसात और धूल न आती हो।
- थ्रैशर को पानी से धो लें और धूप में सुखा लें।
- थ्रैशर के पुर्ज़े भली-भांति जांच कर लें और जिन पुर्ज़ों की मरम्मत या बदलना हो, बदल लें ताकि थ्रेशिंग के समय काम में बाधा न पड़े।
- थ्रैशर की मरम्मत और पुर्ज़े बदलने के बाद थ्रैशर को ग्रीस या मोबिल आयल की परत लगा देनी चाहिए ताकि उनमें जंग न लगे।
- यदि छलनियां ठीक दशा में हो तो छलनियों पर भी ग्रीस या मोबिल आयल की परत लगा देनी चाहिए।
- जिन पुर्ज़ों में ग्रीस भरी जाती हो या तेल लगाया जाता हो उन्हें पहले मिट्टी के तेल से साफ कर लेना चाहिए और फिर उनमें ताज़ी ग्रीस भर लेनी चाहिए या आवश्यकतानुसार तेल लगा देना चाहिए।
- जहां तक संभव हो सारे रास्ते ठीक प्रकार बंद कर लेने चाहिएं जिन से धूल अंदर जाने का खतरा हो।
- इसके उपरांत थ्रैशर को किसी ऐसी सूखी जगह में खड़ी करना चाहिए जहां पानी न भरा हो। अगर कोई शेड उपलब्ध न हो तो पॉलिथीन शीट, त्रिपाल या किसी जलरोधक चादर से ढक देना चाहिए।

थ्रैशर में आने वाली सम्भावित कमियां और उनका निवारण: थ्रैशर में गहाई करते समय विभिन्न प्रकार की कमियां व कठिनाइयां आती हैं। इनमें से सामान्य रूप से आने वाली त्रुटियां, उनके कारण और उपचार निम्न हैं:

कमी : अनाज का बिना थ्रेशिंग हुए ही निकल जाना।

कारण : सिलेंडर का कम गति से चलना, बहुत कम फसल को डालना, कनकेव और सिलेंडर के बीच अधिक दूरी होना।

निवारण : सिलेंडर की गति बढ़ाएं और संस्तुति गति के बराबर रखें। फसल उचित मात्रा में डालें। कनकेव और सिलेंडर के बीच की झिर्री कम करें।

कमी : बड़े-बड़े आकार के भूसे निकलना।

कारण : सिलेंडर की गति मंद होना, सिलिंडर तथा कनकेव के बीच की दूरी का अधिक होना, फसल गीली होना।

निवारण : उचित आकार की पुली लगाकर सिलेंडर की गति बढ़ाएं। नट-बोल्टों के सही समायोजन से सिलेंडर तथा कनकेव के बीच की दूरी को उचित बनाएं। सूखी फसल की ही गहाई करें।

कमी : दानों का टूट जाना।

कारण : गहाई सिलेंडर की गति तीव्र होना, सिलेंडर तथा कनकेव के बीच की जगह का कम होना, मशीन मे जाने वाली फसल का कम और ज़्यादा होना।

निवारण : गहराई सिलेंडर की गति को निर्धारित स्तर से अधिक नहीं होने दें। यह कार्य प्राइम मूवर या थ्रैशर किसी की भी पुली को बदलकर किया जा सकता है। सिलेंडर के बाहरी सिरे तथा कनकेव के बीच की झिर्री नट-बोल्टों के जरिए अधिक कर दें। फसल का समान रूप से डालते रहने का प्रचालन का अभ्यास करवाएं।

कमी : दाने के साथ भूसे का चले जाना।

कारण : ब्लोअर/एस्पिरेटर की गति मंद होना, छलनियों का समुचित प्रकार से नहीं लगा होना।

निवारण : पुली बदलकर ब्लोअर/एस्पिरेटर की गति बढ़ा दें। हवा का बहाव ज़्यादा करें। जिन नट-बोल्टों के जरिए छलनियां टंगी रहती हैं, उन्हें कम कर छलनियों का ढलान कम कर दें। चूशक पाइप तथा स्क्रीन के बीच दूरी कम कर दें।

कमी : भूसों के साथ दानों का चला जाना।

कारण : पंखे की गति का तेज़ होना।

निवारण : ब्लोअर की गति कम कर दें। हवा वहन के द्वार को छोटा कर दें। छलनियों के छिद्रों को ब्रुश से साफ कर लें।

कमी : गांठों, मोटे भूसों आदि के साथ दानों का चला जाना।

कारण : ऊपर की छलनी के छिद्रों का बंद हो जाना, छलनी का ढलान उचित नहीं होना, अनाज को तेज़ी से हिलाया जाना या स्ट्रोक का ज़रूरत से ज़्यादा लम्बा होना।

निवारण : ऊपर की छलनी को साफ कर दें। छलनी की ढलान को नट-बोल्टों की मदद से ठीक प्रकार व्यवस्थित करें। छलनी को बदलकर उचित आकार की छलनी लगाएं। सही आकार वाली पुली लगाएं तथा स्ट्रोक को छोटा कर दें।

कमी : सिलेंडर का अवरुद्ध हो जाना।

कारण : ज़रूरत से ज़्यादा फसल डाला जाना, बेल्ट का ढ़ीला होना, सिलेंडर की गति का बहुत मंद होना, फसल का पूरी तरह सूखा नहीं होना, फसल में अधिक और हरे खरपतवार का विद्यमान होना, कनकेव की जाली और सिलिंडर के बीच अंतर कम होना।

निवारण : फसल कम और समुचित मात्रा में डाली जाए। बेल्टों की जांच करके उन्हें कस दें। सिलेंडर की पुली बदलकर या बेल्ट के कसाव के सही समायोजन से गति को ठीक कर लें। सूखी फसल की ही थ्रेशिंग करें। ऐसा प्रयत्न करें कि फसल में कम से कम हरे खरपतवार हों। नट-बोल्टों को कम कर कनकेव झिर्री उचित मात्रा मे रखें।

कमी : कार्य करते समय थ्रैशर में कंपन होना।

कारण : थ्रैशर के विभिन्न अंगों का फ्रेम से ठीक से नहीं जुड़ा होना, किसी पुर्जो का घिसा पिटा होना,फ्लाई व्हील का ठीक से संतुलित न होना।

निवारण : फ्रेम के विभिन्न अंगों को ठीक से कस दें। घिसे पिटे पुर्ज़ों को बदल दें। फ्लाई व्हील को संतुलित करें।

कमी : समूचे थ्रैशर का सामंजस्य नहीं होना।

कारण : ज़रूरत से ज़्यादा या असमान रूप से फसल डालना। कनकेव जाली का अवरुद्ध होना।

निवारण : फसल डाले जाने की मात्रा को एकसार रखें। कनकेव जाली की सफाई करें।

[1]जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

टीम वर्क (सामूहिक कार्य) का महत्व

विजयपाल सिंह यादव[1], सूबेसिंह एवं आर .एस. हुड्डा
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

किसी भी संस्था के परिणामों को बेहतर बनाने के लिए टीम वर्क के महत्व को समझना बेहद आवश्यक है। संकटपूर्ण स्थितियों में टीम भावना से किया काम सफलता को सुनिश्चित करता है। यह वह स्थिति होती है, जिसमें सभी की जीत होती है। एक साझा उद्देश्य के लिए साथ काम करने की प्रक्रिया ही टीम वर्क है। साथ ही यह व्यक्तियों को संगठनात्मक लक्ष्य हासिल करने के लिए प्रेरित करने का नाम भी है। एक सफल टीम कई हाथ और एक दिमाग वाला समूह होती है। एक सफल टीम में सभी सदस्य एक लक्ष्य की दिशा में अपना योगदान देते हैं और इसके लिए वह अपनी निजी प्राथमिकताओं को भी एक ओर रखते हैं। ऐसे समय में जब संस्थाएं वैश्विक स्वरूप धारण कर रही हैं, विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए टीम भावना से काम करना पहले से अधिक ज़रूरी हो गया है। यह वह ऊर्जा है, जो सामान्य व्यक्ति को विशिष्ट लक्ष्य हासिल करने के काबिल बना देती है। टीम वर्क से जो सफलता हासिल की जाती है वह किसी एक व्यक्ति के प्रयास से सफल नहीं होती बल्कि सारी टीम के सयुंक्त परिश्रम का फल होता है। इस तरह हासिल हुई सफलता को सभी टीम सदस्य शेयर करते हैं तथा ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति से पैदा हुई खुशी भी कई गुना बढ़ जाती है।

आदर्श टीम : आजकल संस्थानों द्वारा विभिन्न कार्यस्थलों पर विविध प्रतिभा वाले कर्मचारी रखे जाते हैं। इसका प्रमुख कारण कार्यस्थल को विविधता प्रदान करने के साथ ही रचनात्मक सोच को बढ़ावा देना भी है। कर्मचारियों की यह विविधता एक टीम की संरचना को भी प्रभावित करती है। एक टीम में विशेष/विशिष्ट क्षेत्रों का अनुभव रखने वाले लोगों की उपस्थिति टीम के परिणाम को बेहतर बनाने में मदद करती है। इसका सीधा फायदा यह होता है कि टीम के सभी सदस्य एक दूसरे के अनुभव से सीखते रहते हैं। बदलावों के प्रति नयी सोच विकसित होती है।

अच्छी टीम व टीम भावना को बढ़ाने में मददगार कदम

असरदार कम्युनिकेशन : असरदार कम्युनिकेशन इसकी पहली शर्त है। टीम के सदस्यों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान बिना रूकावट, स्पष्ट और निर्धारित योजना की सफलता की दिशा में होना चाहिए। संचार व्यवस्था दो तरफा होनी चाहिए। अधिकार और कर्तव्यों की स्पष्टता अधिकारी और कर्मचारियों के तालमेल को बढ़ाती है।

मज़बूत नेतृत्व : कार्यस्थल पर बॉस के काम करने की रफ्तार, टीम की रफ्तार होती है। ज़रूरी है कि टीम लीडर ऐसा हो, जो अपनी कार्यक्षमता से टीम का नेतृत्व कर सके। अपने निजी स्वार्थों से ऊपर उठ कर टीम के लक्ष्य को महत्व दे सके। टीम के सदस्यों में अपने प्रति विश्वास पैदा कर सके, ताकि सभी एक दिशा में बढ़ सकें।

आपसी विश्वास : पारस्परिक मधुर संबंध टीम की सफलता के लिए ज़रूरी होते हैं। सदस्यों के बीच भरोसा मज़बूत होना चाहिए। काम को करने के लिए आवश्यक बातें, प्रोजेक्ट विवरण या कोई नई बात एक दूसरे से तब तक न छुपाएं, जब तक यह संस्थान के हित में न हो।

लक्ष्य : कोई भी टीम विभिन्न विचारों वाले व्यक्तियों से बनी होती है। यह विचार एक दूसरे के विरोधी भी हो सकते हैं। ऐसे में ज़रूरी होना चाहिए कि टीम सदस्यों के कार्य आपसी गुटबंदी या निजी स्वार्थ में न उलझ कर लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में ही आगे बढ़ें।

सहयोगियों के प्रति आदर की भावना : एक दूसरे की क्षमताओं, विचारों और क्रियाओं के प्रति आदर रख कर ही टकराव को कम रखा जा सकता है। एक कुशल टीम लीडर सबके काम की उपयोगिता को न सिर्फ समझता है, बल्कि खास प्रयासों के लिए प्रोत्साहनात्मक कदम भी उठाता है।

सकारात्मक सोच : आप टीम में एक सदस्य के तौर पर काम कर रहे हैं या फिर उसके लीडर हैं, नकारात्मक सोच किसी भी रूप में काम में बाधा पहुंचाती है। टीम के कार्यों पर विपरीत असर डाल सकने वाली ईर्ष्या या द्वेषपूर्ण बातों से दूर रहें। ऑफिस में गप्प बाज़ी से बचें।

कार्य के प्रति ईमानदारी : सभी काम एक व्यक्ति को देना, दूसरों को उसमें शामिल न करना या फिर काम सौंपने के बाद उसे पूरा करने के लिए ज़रूरी अधिकार न देना, काम को बाधित करता है। सभी सदस्यों को उनकी क्षमतानुसार काम बांटें तथा बीच-बीच में दिए गए कार्यों की समीक्षा करते रहें।

साथ रहते टकराव होना : जब एक साथ कई लोग काम करते हैं तो उनमें तकनीकी मतभेद होना भी स्वाभाविक है। विचारों की यह भिन्नता और टकराव हमेशा नकारात्मक नहीं होते। कई बार इस प्रक्रिया में नए विचार और कार्य करने के बेहतर रास्ते भी सामने आते हैं। जिससे लक्ष्य प्राप्ति आसान हो जाती है। अगर कोई एक या दो टीम सदस्य किसी विचार पर सहमत नहीं हैं तो अक्सर दूसरे सदस्य मौन बने रहे रहते हैं, जो ठीक नहीं हैं। टीम के सदस्यों को विवादित विचारों पर बात करते हुए सही समय पर टकराव की आशंका को दूर करना चाहिए।

समाधान बिंदु :

- मतभेद के मुद्दे को पहचानें व उस पर बातचीत करने में पीछे न हटें।
- समस्या के सभी पहलुओं को समझें।
- साझा सामाधान तलाशें, ताकि सभी सदस्य नई ऊर्जा के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकें।

टीम वर्क की जीत सबकी जीत :

- टीम वर्क से कोई भी काम कम वक्त में पूरा हो जाता है। जब कई लोग किसी एक समस्या का समाधान ढूंढने की कोशिश करते हैं तो बेहतर विचार सामने आते हैं। इनमें सबसे बढ़िया विचार के आधार पर योजना बना कर उसे अंजाम दिया जा सकता है।
- टीम वर्क से टीम सदस्यों में एकता तो बढ़ती ही है, मेल-जोल भी बढ़ता है।
- टीम के रूप में कार्य करते वक्त इसके सदस्य एक दूसरे की मदद करते हैं, क्योंकि तब उनका लक्ष्य होता है मिशन को अच्छी तरह से पूरा करना। इस तरह कार्यस्थल पर सकारात्मक माहौल बनता है।
- टीम का हर सदस्य ज़िम्मेदार बनता है, क्योंकि हर सदस्य की ज़िम्मेदारी अपने-अपने कार्य के प्रति होती है।
- टीम के सदस्य एक-दूसरे से कई नई चीज़ें सीखते हैं। ऐसी बातें सीखने को मिलती हैं, जो उनके निजी जीवन और करियर में काम आती हैं, जैसे आपसी संवाद का महत्व, निर्णय क्षमता और योजना को अंजाम देने की प्रक्रिया।
- अक्सर टीम वर्क में कार्य करने का अपना ही मज़ा होता है। काम करते समय आपसी व्यवहार से काम में नीरसता भी नहीं आती।
- टीम वर्क से सदस्यों में खुद के प्रति सम्मान की भावना आती है। हर व्यक्ति खुद की अहमियत को समझता है। पूरी टीम के सामने उसे अपने ज्ञान और हुनर को पहचान दिलाने का मौका मिलता है।
- टीम वर्क से बड़ी समस्याएं भी छोटी हो जाती हैं।
- टीम वर्क में गलती की संभावनाएं कम होती हैं, क्योंकि एक व्यक्ति का काम दूसरे से जुड़ा होता है, इसलिए प्रत्येक स्तर पर कार्य की समीक्षा होती रहती है।
- अच्छा टीम वर्क किसी संस्थान को कम समय में बेहतर नतीजे तक पहुंचाता है।

[1]प्रधान विस्तार शिक्षा विषेशज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, फरीदाबाद

प्याज़ और लहसुन फसलों में एकीकृत पोषक प्रबंधन

✍ **विजय कुमार, कनिका पंवार एवं सोनू कुमार**
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्याज़ और लहसुन उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय पौधों की महत्वपूर्ण बल्ब फसल हैं। संतुलित उर्वरक और जैविक खादों के उपयोग के बिना, नाइट्रोजन के अत्यधिक उपयोग से भारतीय मिट्टी में फॉस्फोरस, पोटाश और सूक्ष्म पोषक तत्व (लौह और जस्ता) की कमी हो रही है। पौधों को विकसित करने के लिए 16 तत्वों की आवश्यकता होती है। ये कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम, सल्फर, जस्ता, लोहा, मैंगनीज़, तांबा, मोलिब्डेनम, बोरान और क्लोरिन हैं। कार्बन की आपूर्ति वायुमंडल से की जाती है, पानी, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन की आपूर्ति करता है। बाकी तत्व मिट्टी या उर्वरक से मिलते हैं। मृदा तत्व फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम, सल्फर, मिट्टी और उर्वरकों के माध्यम से या कार्बनिक पदार्थों के टूटने से प्राप्त होते हैं। सूक्ष्म तत्व अर्थात जस्ता, लोहा, मैंगनीज़, तांबे, मोलिब्डेनम, बोरान और क्लोरिन मिट्टी और उर्वरकों के माध्यम से प्राप्त होते हैं। उर्वरक कार्यक्रम में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी के कारण प्याज़ और लहसुन की उत्पादकता में कमी आ सकती है। भारत में प्याज़ और लहसुन का उत्पादन और गुणवत्ता को संतुलित पोषण और जैविक उर्वरक दोनों के एकीकृत उपयोग से बढ़ाया जा सकता है।

विभिन्न फसलों में उर्वरक सिफारिशें मिट्टी परीक्षण रिपोर्ट या समग्र सिफारिश के आधार पर की जाती हैं। मिट्टी परीक्षण के आधार पर किए गए उर्वरक सिफारिश हमेशा बेहतर और लाभदायक होता है। क्योंकि इससे हमें कौन सा खाद कितनी मात्रा में और कब डालना चाहिए इसकी पूर्ण जानकारी मिलती है। इसलिए जहां तक सम्भव हो खाद मिट्टी परीक्षण के आधार पर डालें। इसके इलावा विभिन्न संगठनों द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्र में प्याज़ और लहसुन के लिए उर्वरक सिफारिशें की हैं जो नीचे दी गई हैं।

पी के वी, आकोला

लहसुन : अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या कंपोस्ट 25 से 30 गाड़ी का लोड प्रति हैक्टेयर मिट्टी की तैयारी के समय पर डालें। लहसुन में 50 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किग्रा फास्फोरस और 50 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टेयर डालनी चाहिए। उसके बाद 50 किलोग्राम नाइट्रोजन को बुवाई के एक महीने बाद दिया जाता है।

एन एच आर डी एफ

लहसुन में कार्बनिक खाद डालने से बहुत अच्छी फसल मिलती है। एक सामान्य मिट्टी के लिए 50 टन गोबर की खाद तथा 100 किलो नाइट्रोजन, 50 किलो फास्फोरस और 50 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर रासायनिक उर्वरक की सिफारिश की गई है।

टीएनएयू

प्याज़ नाइट्रोजन और पोटाश का एक भारी फीडर है। अच्छी फसल के लिए 35 टन/हैक्टेयर पैदावार के लिए 120 किलो नाइट्रोजन, 50 किलो फास्फोरस और 160 किलो पोटाश, 15 किलो मैग्नीशियम और 20 किलो सल्फर की ज़रूरत होती है। पहली बार खेत की जुताई के समय 20-25 टन गोबर की खाद डालें ताकि पोषक तत्व बाद में फसल बढ़ने के दौरान अच्छी तरह मिल सके। फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम ज़मीन की तैयारी के समय डाली जानी चाहिए। नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में डाला जाना चाहिए, पहली में ट्रांसप्लांटिंग के 3-4 सप्ताह बाद और दूसरी ट्रांसप्लांटिंग के दो महीने बाद।

आईसीएआर- प्याज़ और लहसुन अनुसंधान निदेशालय, राजगुरुनगरः पुणे

प्याज़ : प्याज़ की फसल द्वारा पोषक तत्वों का उपयोग मुख्य रूप से बल्ब उपज, विविधता, उर्वरकों की मात्रा, मिट्टी की स्थिति और मौसम पर निर्भर करता है। डीओजीआर राजगुरुनगर में किए गए प्रयोग के परिणाम ने दिखाया कि प्याज़ की फसल के लिए लगभग 90-95 किलो नाइट्रोजन, 30-35 किलोग्राम फास्फोरस, और 50-55 किग्रा पोटाश, 40 टन प्याज़ बल्ब/हैक्टेयर के उत्पादन के लिए ज़रूरी होता है। इसलिए, टिकाऊ प्याज़ उत्पादन और मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए अलग-अलग स्रोतों के माध्यम से बाह्य रूप से संतुलित तरीके से खादों का प्रयोग करना आवश्यक है। डीओजीआर में आयोजित क्षेत्र प्रयोगों के परिणामों के आधार पर, जैविक खाद और उर्वरकों की सिफारिश की खुराक को मानकीकृत किया गया है और तालिका 1 में प्रस्तुत किया गया है। लंबी अवधि के प्याज़ (पहाड़ियों में उगाए गए) की उर्वरक आवश्यकता उसके लंबे समय से फसल की अवधि और उपज की क्षमता के कारण कम अवधि प्याज़ की फसल की तुलना में अधिक है।

जैव उर्वरक

जैविक/कार्बनिक खाद के इलावा डीओजीआर में किए गए प्रयोगों के आधार पर जैव उर्वरक की सिफारिश भी की है। जैव उर्वरक वह पदार्थ है जिसमें जीवित सूक्ष्मजीव होते हैं। जैव उर्वरक या तो बीज उपचार या मिट्टी के साथ मिला कर इस्तेमाल किया जा सकता है। बीज या मिट्टी के उपचार के बाद सूक्ष्म जीव पौधों के अंदरूनी उपनिवेश को बढ़ावा देता है और जैविक नाइट्रोजन निर्धारण, फास्फोरस सोल्यूबिलाइज़ेशन और प्राथमिक पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ावा देता है। डीओजीआर में किए गए प्रयोगों के आधार पर, बायोफर्टिलाइजर्स/5 किग्रा अज़ोस्पिरिलम/हैक्टेयर और फास्फोरस सोल्यूबिलाइजिंग बैक्टीरिया को प्याज़ की फसल के लिए सिफारिश किया जाता है। अस्पिरिलिमम जैविक नाइट्रोजन निर्धारण के माध्यम से मिट्टी नाइट्रोजन में सुधार करता है जबकि फॉस्फोबैक्टीरिया मिट्टी में उपलब्ध अनुपलब्ध फास्फोरस को

तालिका 1. प्याज़ फसल के लिए उर्वरकों की मात्रा/हैक्टेयर

अनुसूची	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	जैविक/कार्बनिक खाद
खरीफ प्याज़ (पैदावार क्षमता - 25-30 टन / हैक्टेयर)				
खेत की तैयारी के समय	25 किलो	40 किलो	40 किलो	कार्बनिक खाद 75 किलो नाइट्रोजन के बराबर (गोबर के खाद - लगभग 15 टन/है. व पोल्ट्री खाद- लगभग 7.5 टन/है. व वर्मीकंपोस्ट - लगभग 7.5 टन/हैक्टेयर)
30 दिन बाद	25 किलो	-	-	-
45 दिन बाद	25 किलो	-	-	-
कुल	75 किलो	40 किलो	40 किलो	-
खरीफ और रबी प्याज़ (पैदावार क्षमता - 40-50 टन / हैक्टेयर)				
खेत की तैयारी के समय	40 किलो	40 किलो	60 किलो	कार्बनिक खाद 75 किलो नाइट्रोजन के बराबर

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा प्याज़ फसल के लिए उर्वरकों की मात्रा/हैक्टेयर की सिफारिश

खरीफ प्याज़

अनुसूची	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	जैविक/कार्बनिक खाद
खरीफ प्याज़ (पैदावार क्षमता – 25–30 टन / हैक्टेयर)				
खेत की तैयारी के समय	25 किलो	15 किलो	10 किलो	गोबर की खाद – लगभग 25–30 टन /है.
30 दिन बाद	12.5 किलो			
60 दिन बाद	12.5 किलो			
रबी प्याज़				
खेत की तैयारी के समय	25 किलो	15 किलो	10 किलो	गोबर की खाद – लगभग 25–30 टन/है.
30 दिन बाद	12.5 किलो			
60 दिन बाद	12.5 किलो			

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा प्याज़ फसल के लिए उर्वरकों की मात्रा/हैक्टेयर की सिफारिश

अनुसूची	नाइट्रोजन	नाइट्रोजन	पोटाश	जैविक / कार्बनिक खाद
खरीफ प्याज़				
खेत की तैयारी के समय	17 किलो	20 किलो	20 किलो	गोबर की खाद – लगभग 50 टन / है.
30 दिन बाद	17 किलो			
60 दिन बाद	17 किलो			

घोलता है और उन्हें पौधों के लिए उपलब्ध कराता है

अखिल भारतीय नेटवर्क अनुसंधान परियोजना

लहसुन

उर्वरक और खाद : टिकाऊ लहसुन उत्पादन के लिए बाह्य स्रोतों के माध्यम से पौधों में पोषक तत्वों को डालना आवश्यक है। विभिन्न स्थानों पर प्याज़ और लहसुन पर अखिल भारतीय नेटवर्क अनुसंधान परियोजना के माध्यम से किए गए क्षेत्र प्रयोगों के आधार पर, दो या तीन कार्बनिक खादों (एफवायएम, कुक्कुट खाद और वर्मीकंपोस्ट) संयोजन के साथ-साथ 75: 40: 40: 40 किलो एनपीकेएस प्रति हैक्टेयर डालना चाहिए। बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान और तमिलनाडु (ऊटी) में कार्बनिक खाद 7.5 टन पोल्ट्री खाद व 7.5 टन वर्मीकंपोस्ट व 15 टन एफवायएम प्रति हैक्टेयर डालना चाहिए । हरियाणा, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश के लिए 100: 50: 50: 50 किग्रा एनपीकेएस + 20 एफवायएम/हैक्टेयर की सिफारिश की गई है। मिट्टी में आखिरी जुताई पर जैविक खाद को डालना चाहिए। रोपण के समय नाइट्रोजन का एक तिहाई भाग और फॉस्फोरस, पोटेशियम और सल्फर की पूरी सिफारिश की खुराक को खेत की तैयारी पर डालना चाहिए। नाइट्रोजन का दो तिहाई भाग दो समान भागो में 30 और 45 दिनों के रोपण के बाद डालना चाहिए। मुख्य पोषक तत्वों के अलावा, सूक्ष्म पोषक तत्व (लोहा: 0.5%, ज़िंक: 0.5% , बोरोन: 0.25%, तांबा: 0.25% और मैंगनीज़: 0.5%) छिड़काव द्वारा 30, 45 और 60 दिनों के रोपण के बाद डालना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रयोग से बल्ब की पैदावार 5-7% बढ़ जाती है।

डीओजीआर में किए गए प्रयोगों के आधार पर, बायो फर्टिलाइलाइज़र्स एज़ोस्पिरिलम और फॉस्फोरस बैक्टीरिया को 5 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर के लिए लहसुन की सिफारिश की जाती है। अनुशंसित जैव उर्वरकों को 100-200 किलोग्राम एफवायएम के साथ मिलाया जाना चाहिए जिसमें 50% नमी होती है और रोपण से पहले डालना चाहिए।

फसल एवं घरेलू जैव अवशेष प्रबंधन : मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए आवश्यक

✍ **नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं मनोज कुमार शर्मा**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में प्रति वर्ष लगभग 5018 लाख टन फसल अवशेष निकलता है जिसमें से लगभग 912 लाख टन जला दिया जाता है। शहरों में औसतन लगभग 300 से 600 ग्राम कचरा प्रति घर से रोज़ाना निकलता है अर्थात देश में लगभग 1.27 लाख टन कचरा प्रतिदिन निकल रहा है जिसका 60 प्रतिशत जैविक (लगभग 279 लाख टन प्रति वर्ष) कचरा निकलता है। जो मानव उपयोग के बाद बचा जैव कचरा शहरों में डम्पिंग साइड पर कचरे के पहाड़ के रूप में बड़ी समस्या बन चुका है जिससे मीथेन व कार्बन डाई ऑक्साइड जैसी हानिकारक गैसें उत्सर्जित होती हैं जो वायुमंडल का तापमान बढ़ा रही हैं और यह अनेक महामारियों/बीमारियों को जन्म देने के साथ ही डम्पिंग साइड की भूमि व वातावरण को दूषित कर रहा है। खेत, खलिहान और घर से निकलने वाला कचरा किसानों के लिए बेहद उपयोगी साबित हो सकता है। कृषि कचरे से बनने वाला वर्मी कम्पोस्ट न केवल प्रदूषण को नियंत्रित करता है बल्कि मृदा के स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रखता है। कुटीर उद्योग के रूप में इसका इस्तेमाल किसानों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने में भी मददगार है।

भारतीय कृषि पर लगातार आबादी का दबाव बढ़ता जा रहा है। किसान ने कृषि उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरक व कीटनाशकों का उपयोग बढ़ाया है जिससे कृषि लागत में वृद्धि हुई है साथ ही मृदा और कार्बन खाद्य गुणवत्ता में कमी आयी है। हाल ही में मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से जो मृदा आंकड़े सामने आये हैं उनमें अधिकांश मृदा में जैविक कार्बन की कमी पायी गयी, जो मृदा स्वास्थ्य के लिय सभी आवश्यक पोषक तत्वों को उपलब्ध करने वाला आधार (स्रोत) माना जाता है। जैविक कार्बन की कमी का मुख्य कारण है कि लगातार पोषक तत्वों का दोहन किया जा रहा है। सघन खेती के माध्यम से लाखों टन जैव अवशेष खेतों से निकल कर शहर में कूड़े के रूप में जमा हो रहा है या जला दिया जाता है। घरों से निकलने वाले जैविक कूड़े को फार्म अपशिष्ट के साथ पुन: खेत में पहुंचाकर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है। कृषि के अपशिष्ट पदार्थ, रसोई के कूड़े कचरे को दोबारा उपयोगी पदार्थ में बदलने के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। भारत में उपलब्ध घरेलू जैव कूड़ा और जलाया जाने वाला फसल अवशेष से कम्पोस्ट खाद का विवरण सारणी 1 में दिया है।

जबकि इस जैव अपशिष्ट से प्रति वर्ष लगभग 298 लाख टन कम्पोस्ट खाद बनाकर लगभग 30 लाख हैक्टेयर भूमि को उपजाऊ बनाकर देश में लगभग 1711 करोड़ का उर्वरक खर्चा प्रति वर्ष बचाया जा सकता है। प्रत्यक्ष और अवशिष्ट प्रभाव की गणना के अनुसार मृदा में कार्बनिक खाद की क्षमता उर्वरक-नाइट्रोजन की तुलना में 50 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। धान-गेहूं फसल-चक्र के अन्तर्गत धान की फसल में 12 टन प्रति हैक्टेयर की दर से कम्पोस्ट खाद का इस्तेमाल करने पर 40 किलोग्राम नाइट्रोजन और 30 किलोग्राम फास्फोरस एवं 30 किलोग्राम पोटाश की पूर्ति हो जाती है। देश में विभिन्न स्थानों पर चल रहे दीर्घकालीन परीक्षणों से कम्पोस्ट खाद के प्रयोग के लाभदायी परिणाम की पुष्टि हुई है।

यदि हमें स्वच्छ भारत, स्वस्थ धरा और स्वस्थ भारतीय नागरिक का सपना साकार करना है तो खेत से जो भी कार्बनिक जैव पदार्थ (खाद्य

सारणी 1: भारत में प्रति वर्ष कम्पोस्ट खाद के लिए उपलब्ध अपशिष्ट

घरेलू अपशिष्ट	मात्रा (लाख टन/वर्ष)	फसल अपशिष्ट	मात्रा (लाख टन/वर्ष)	कुल मात्रा
*कुल घरेलू अपशिष्ट	465	**कुल फसल अपशिष्ट	5018	5438
घरेलू जैवअपशिष्ट (कुल अपशिष्ट का 60%)	279	***फसल अपशिष्ट जो जलाया जाता है	912	1164
कम्पोस्ट खाद (जैवअपशिष्ट का 25%)	70	कम्पोस्ट खाद जलाए जाने वाले फसल अपशिष्ट से (फसल अपशिष्ट का 25%)	228	298
खाद से लाख हैक्टेयर भूमि उपजाऊ (लाख हैक्टेयर) (10 टन प्रति है. दर से)	7	कम्पोस्ट खाद से भूमि उपजाऊ (लाख हैक्टेयर) (10 टन प्रति है. दर से)	23	30

स्रोत: *सी.पी.सी.बी.जुलाई, 2012 रिपोर्ट अनुसार,**एम.एन.आर.ई., 2009, ***आई.पी.सी.सी. अनुसार

पदार्थ) ले रहे हैं उसके उपयोग के बाद बचा जैव कचरा या फसल अवशेष को कम्पोस्ट खाद बनाकर पुन: खेत में डाल कर मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाया जा सकता है । इसके लिए प्रत्येक भारतीय नागरिक को एक प्रण लेना होगा कि हम अपने घर की रसोई में ही जैविक कूड़ा (सड़ने वाला कचरा)और अजैविक कूड़ा अलग करना आवश्यक है।

उर्वरकों के प्रचलन के बाद किसानों द्वारा कम्पोस्ट तैयार करने के प्रति अरूचि ही कम्पोस्ट के उपयोग में मुख्य बाधा साबित हो रही है। जो भी कम्पोस्ट किसानों के पास उपलब्ध है, उसकी गुणवत्ता (पोषक तत्वों की मात्रा) बहुत कम है क्योंकि किसान इसे वैज्ञानिक विधि से तैयार नहीं करते। वैज्ञानिक विधि से तैयार कम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा में सार्थक वृद्धि होती है।

कम्पोस्ट तैयार करते समय ध्यान रखने योग्य बातें :

एक अच्छी गुणवता वाले कम्पोस्ट खाद के लिए निम्न मापदंड तथा प्रयोग दर आवश्यक है जिसका विवरण सारणी-2 में दिया है:

1. जो भी जैव अपशिष्ट इकट्ठा किया है उसमें अजैविक कूड़ा न हो और इसे छोटे-छोटे हिस्सों में काटें ताकि विघटन तेज़ी से हो सके।
2. जैव अपशिष्ट के सही विघटन के लिए 30:1 का कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात उपयुक्त होता है।कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात इस सीमा से अधिक होने की दशा में विघटन की गति मंद पड़ जाती है, परिणामस्वरूप खाद तैयार होने में अधिक समय लगेगा।
3. जैव अपशिष्ट के गलन हेतु तथा सूक्ष्म जीवों के गुणन हेतु नमी की आवश्यकता होती है अत: विघटन के समय 50-55 प्रतिशत तक नमी अवश्य रहनी चाहिए।
4. जैव अपशिष्ट का विघटन ऑक्सीजन की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति दोनों में होता है अत: उपयुक्त वायु संचार बनाये रखने के लिय 10-15 दिन के अन्तराल से जैव अपशिष्ट को पलटते रहना आवश्यक है ।
5. वायुवीय विघटन एक उष्मा उत्सर्जन प्रक्रिया है। जिसमें विघटन शुरू होते ही तापमान बढ़ने लगता है जो धीरे-धीरे बढ़कर 55 से 65 डिग्री से. तक पहुंच जाता है। अत: तापमान इससे ज़्यादा या कम होना विघटन को प्रभावित करता है ।
6. कम्पोस्ट ढ़ेर में विघटन प्रक्रिया शुरू होते समय अनेक प्रकार के अम्लों का उत्पादन होता है जिससे पूरे ढेर का पी.एच मान 6 से शुरू होकर 5.0 से 4.5 तक पहुंच जाता है परंतु जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है पी.एच. मान अम्लीय से क्षारीय होने लगता है। पूर्ण रूप से विघटित कम्पोस्ट का पी.एच. मान 7.5 से 8.5 के बीच में होना चाहिए। अम्लीय पी.एच. मान कम्पोस्ट की अपूर्ण विघटनता का द्योतक है।
7. अवशेषों का तेज़ गति से विघटन करने के लिए इसमें कल्चर या पुरानी खाद अच्छी प्रकार मिला दें। कल्चर में एस्परजिलस अवमोरी, ट्राइकोडर्मा विरडी, एस्परजिलस निडूलंस, फनेरोकीट क्राइसोस्पोरियम कवक होती है जो तेज़ी से एरोबिक अपघटन करते हैं एक टन अपशिष्ट कूड़े के लिए लगभग 500 ग्राम पूसा कम्पोस्ट कल्चर (टीका) पर्याप्त है।

तैयार कम्पोस्ट खाद को उपयोग के लिए कुछ बातों को ध्यान रखना ज़रूरी है ताकि इसमें जो लाभकारी तत्व हैं उनकी हानि इसके उपयोग में न हो :

1. इसके तैयार होने के बाद जल्दी ही उपयोग में लाना चाहिए, नहीं तो गड्ढे में इकट्ठा करके मिट्टी की पतली सी परत से ढक देना चाहिए।
2. खेत में डालने के उपरांत एकदम इसे मिट्टी में मिला देना चाहिए नहीं तो मिट्टी की सतह पर रहने से नाइट्रोजन की हानि हो जाती है जो कि गर्म जलवायु वाली जगह पर बहुत ही ज़्यादा होती है।
3. बीज बीजने के कम से कम एक सप्ताह पहले ही इसे मिट्टी में मिला देना चाहिए ताकि बीजों का अंकुरण अच्छा हो। भारत जैसे विकासशील देश में अधिकतम कृषि-उपज प्राप्त करने के लिए भूमि की उर्वराशक्ति को उच्च स्तर पर बनाए रखना नितान्त आवश्यक है।
4. इसके लिए जो लाखों टन जैविक कूड़ा वातावरण को दूषित कर रहा है उसका उचित प्रबंधन करके कम्पोस्ट तैयार किया जाये जिससे नये रोज़गार का सृजन होगा और उर्वरक खर्चा बचा कर किसान की लागत में कमी लाई जा सकती है । हम एक कदम स्वच्छता का घर स्तर पर ही बढ़ाकर जैव कूड़ा अलग करें और फसल अपशिष्ट को न जलाएं तो भारतीय कृषि को मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की ओर बढ़ाया जा सकता है।

सारणी 2: एक अच्छी गुणवत्ता वाले कम्पोस्ट खाद के लिए निम्न मापदंड तथा प्रयोग दर

माप-दंड	अच्छी कम्पोस्ट के मानक	कम्पोस्ट का प्रयोग दर
रंग	काला भूरा	नर्सरी-1-2 कि.ग्रा./मी2
गंध (दुर्गन्ध)	कोई दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिए	मुख्य फसलें गेहूं, मक्का इत्यादि - 5-10 टन/हैक्टेयर
पी.एच.	6.5 से 7.5	फलों के पौधे 5-20 कि.ग्रा.
विधुत चालकता (कै/उ)	4 से कम	
कार्बन:नाइट्रोजन	20:1	सजावटी पौधों, नर्सरी बेड-500 ग्राम/पौधा
नमी	15 से 25%	-

(पृष्ठ 22 का शेष)

मुकाबले होने वाले फायदे बहुत कम हैं।

4. कुछ इलाकों में गत्ता, कागज़ बनाने वाली फैक्ट्री एवं बिचोलिये इस पराली को खरीदते हैं लेकिन वह भी बहुत कम क्षेत्र की पराली का ही इस्तेमाल कर पाते हैं।
5. पराली नियोजन का कार्य समय लेने वाला होता है इसलिए कुछ बड़े किसान क्षमता होने के पश्चात भी इसे जलाना ही सही समझते हैं।
6. हाथ से कटाई के लिए मज़दूरों की घटती उपलब्धता और बढ़ते रेट के कारण किसान बढ़-चढ़कर बासमती की पराली को भी कंबाइन से कटवा रहे हैं।
7. कुछ किसानों का यह भी मानना है कि पराली को जलाने से खेत में कीट एवं खरपतवार भी खत्म हो जाते हैं और बची हुई राख आने वाली फसल के लिए फायदेमंद होती है।

हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश में हर साल करीब 2.3 करोड़ टन पराली को जलाया जाता है। इससे जलवायु की गुणवत्ता बेहद गिर जाती है जिससे इंसानों और जानवरों में हृदय एवं श्वास संबंधी रोगों के होने की सम्भावना बढ़ जाती है। ज़मीन में मौजूद तत्व एवं मित्र कीट भी नष्ट हो जाते हैं।

सरकार द्वारा पहल : इस समस्या को देखते हुए कृषि मंत्रालय एवं पर्यावरण मंत्रालय ने संबंधित राज्यों से समय-समय पर विचार विमर्श किया और इसका समाधान करने के लिए साल 2018-19 एवं 2019-20 के लिए "फसल अवशेष के इन- सीटू प्रबंधन के लिए पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और दिल्ली के एनसीटी में कृषि यंत्रीकरण योजना बनायी है। क्यूंकि अगर किसान पराली नियोजन कर उसे अपने खेत में मिला दें तो प्रति हैक्टेयर उस खेत में 1.6 टन कार्बन, 30 किलो नत्रजन, 4-7 किलो फॉस्फोरस, 60-100 किलो पोटाश एवं 4-6 किलो सल्फर बढ़ जाता है। आर्थिक तौर से देखें तो इससे किसान को 1500-2000 रु. प्रति हैक्टेयर का फायदा मिलता है। इस योजना के अंतर्गत लाभार्थियों को पराली को खेत में ही मिलाने के लिए विभिन्न मशीनें अनुदान पर दे कर कस्टम हायरिंग सेंटर बनाने का प्रावधान है। इस सेंटर से कोई भी ज़रूरतमंद किसान मशीन किराये पर ले सकता है।

लाभार्थी : किसान, किसानों की सहकारी समितियां, किसान-उत्पादक संगठन, पंजीकृत किसान समाज, किसान समूह, निजी उद्यमी, महिला किसान समूह या स्वयं सहायता समूह।

आर्थिक मदद :

1. प्रति किसान परियोजना की लागत अधिकतम 75 लाख तक सीमित है।
2. इसे तीन श्रेणियों में बांटा गया है: न्यूनतम 10 लाख (ट्रैक्टर नहीं खरीद सकता), 10 से 25 लाख (अधिकतम 1 ट्रेक्टर) एवं 25 से 75 लाख (2 ट्रैक्टर)।
3. परियोजना की कुल लागत का कम से कम 35 प्रतिशत पराली नियोजन की मशीनरी पर खर्च करना अनिवार्य है।
4. पराली नियोजन मशीनरी की लागत पर अनुदान 80 प्रतिशत है और बाकि मशीनरी पर अनुदान 40 प्रतिशत की दर से दिया जायेगा।
5. जो लोग पूर्व में ही कस्टम हायरिंग सेंटर स्थापित कर चुके हैं वो भी इस परियोजना में भाग ले सकते हैं।

तालिका 2. कस्टम हायरिंग सेंटर स्कीम के तहत पराली नियोजन के लिए उपलब्ध उपकरण एवं अनुदान

विवरण	अधिकतम अनुदान राशि (प्रति उपकरण)	अनुदान (प्रतिशत में)
सुपर एसएमएस	90000	80
हैप्पी सीडर	121000	80
चॉपर कॉम्बो	224000	80
कटर एवं स्प्रेडर	122000	80
हायड्रौलिक मिट्टी पल्टू हल	143000	80
रोटरी स्लेशर	36000	80
ज़ीरो टिल ड्रिल	43000	80
रोटावेटर	75000	80

ध्यान दें: अधिकतम अनुदान राशि मशीन की क्षमता पर निर्भर करती है।

इसके इलावा हरियाणा सरकार किसानों से सीधे तौर पर पराली खरीद कर ''चारा बैंक'' बनाने पर भी विचार कर रही है। इस चारे का इस्तेमाल आने वाले वक्त में पानीपत स्थित बिजली घर में और जैविक ईंधन बनाने के लिए भी इस्तेमाल किया जायेगा। हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय भी नीदरलैंड की कंपनियों के साथ मिल कर पराली से उच्च गुणवत्ता के गत्ते और विभिन्न प्रकार के ईधन बनाने पर भी काम कर रही है। इस परियोजना के तहत प्रदेश स्तर पर सर्वेक्षण भी कराया गया जिससे कुछ महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध हुई हैं।

इस सर्वेक्षण के अंतर्गत पराली जलाने की समस्या से जूझ रहे हरियाणा के 4 ज़िले (करनाल, कैथल, कुरुक्षेत्र एवं फतेहाबाद) शामिल किये गए। इन ज़िलों में किसानों, पराली व्यापर में बिचोलियों एवं व्यापारियों को शामिल किया गया। इससे यह पता चला कि आज के वक्त में पराली को खेत से हटाने का कोई सस्ता उपाय नहीं है। इस वजह से किसानों को मज़बूरन पराली को जलाना ही पड़ता है। लेकिन सरकार की ओर से बढ़ते दबाव के कारण कुछ किसान गांठ बनाने की मशीन वाले व्यापारियों एवं बिचोलियों को अपना खेत साफ करने के लिए 1000 से 1500 रु. खर्च कर रहे हैं। पराली नियोजन के हर तरीके से किसान को ही अतिरिक्त आर्थिक बोझ या नुक्सान झेलना पड़ रहा है। सर्वेक्षण में शामिल हर किसान ने यह सुझाव दिया कि विदेशों की तरह भारत में भी फसल की कटाई के साथ-साथ पराली की बड़ी गांठ बनाने योग्य मशीनें बनाई जाएं जिससे इस समस्या को पूर्णत: हल किया जा सकता है।

इस सब से यह पता चलता है कि हरियाणा एवं केंद्र सरकार इस समस्या को जल्द से जल्द हल करने के लिए पराली नियोजन की इस योजना को और बड़े स्तर पर ले जाएं क्यूंकि इस समस्या का आकार बहुत बड़ा है। साथ ही साथ गांठ बनाने के संयंत्रों पर भी अनुदान का प्रावधान, एवं पराली का इस्तेमाल कर विभिन्न उत्पाद बनाने वाली कंपनियों को हरियाणा में लाया जाये जिससे कि किसानों को पराली से इतना पैसा अवश्य मिल सके जिससे उनकी कटाई का खर्च निकल सके और उन पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ न पड़े। इसके अलावा किसान जो पराली प्रबंधन के लिए कस्टम हायरिंग सेंटर से मशीनों को किराए पर लेते हैं उनके लिए भी अनुदान की व्यवस्था की जाये ताकि उन पर इस अनचाहे खर्च का बोझ कुछ कम अवश्य हो।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

Agro-forestry : Approach for Sustainable Production

✍ **A. K. Deswal, R. B. Gupta and J. N. Yadav**
Krishi Vigyan Kendra, Faridabad
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The tree cover maintenance is vital both for ecological balance and for economic sustainability of food production system. In India, trees have always found a place in the agricultural production system. Some trees are even worshiped and grown traditionally like khejri (*Prosopis cineraria*) in arid areas. Recently trees have found a place because they yield a variety of products and give a handsome income to the growers. However, during the last few decades tree planting has been subjugated to agriculture to meet the demands of food grains for the increasing population. Consequently forest area has receded and natural resources have shrunken considerably. Sincere efforts are being made by way of planting trees under various forestry schemes to achieve the target of 33 percent forest area in the country. However, as per the recent state of the forest report the tree cover is only about 22 percent of the total geographical area of country. In Haryana, the tree cover is about 10 per cent of the total geographical area of state and the target is to increase to 20 per cent of the total area of state.

Agro-forestry has been defined in many ways depending on its objectives and requirements. In general agro-forestry can be defined to raised the tree, the crops and animals on the same farm. Scientifically, agro-forestry can be defined as a collective name for land use systems and technologies in which woody perennials (trees including fruit tree, shrubs, palms, bamboos, etc.) are deliberately combined on the same land management unit with herbaceous crops and /or animals either in some farm of spatial arrangement or temporal sequence. In agro-foresty, there are both ecological and economical interaction amongst the different components.

Agro-foresty systems : Based on the nature of components the common agro-forestry systems are as under :

i. Agri-silviculture : crops (including shrubs/vines) and trees.
ii. Silvopastoral : pasture / animals and trees.
iii. Agro-silvopastoral : crops, pasture/animals and trees.

(contd. on page 32)

Molya – The Lesser Known Disease of Wheat in Haryana

✍ **R. S. Kanwar**
Department of Nematology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Molya is a common name given to disease caused by cereal cyst nematode, *Heterodera avenae*. This is the most serious soil borne disease of wheat and barley in Rajasthan and Haryana. In Haryana, the disease is prevalent in South-Western parts including Bhiwani, Faridabad, Fatehabad Gurgaon, Hisar, Jhajjar, Mahendergarh, Mewat, Rewari, and Sirsa districts. Recent surveys have shown that this disease has appeared in serious form in some parts of Hisar, Fatehabad and Sirsa districts, while it is on the decline in other districts due to rotation of wheat with mustard and other non-host crops. The disease can cause heavy losses when nematode population becomes high due to continuous cultivation of susceptible wheat and barley. During rabi 2006, in Hisar, Fatehabad and Sirsa districts, many fields of late sown wheat suffered losses as high as 60-100% and some farmers had to plough their fields.

Disease Symptoms : Above ground symptoms produced by this disease include stunted and poor growth which usually appears in patches. Such patches can be seen from a distance in the field. The symptoms resemble with the nutritional deficiency symptoms in crop but the crop growth does not improve on application of fertilizers and irrigation. Nematode affected plants have very poor tillering. Infected roots give bushy appearance and show slight swellings at the points of nematode entry. During January-February, small, white, bead-like structures (female nematode) can be seen attached to roots. At the time of crop maturity, these females get detached from roots and turn brown called cysts. They remain in soil and contain hundreds of eggs which serve as inoculum for the next year crop.

Pre-disposing Factors : Molya disease appears in serious form when a susceptible crop is grown in field having high nematode population density. Low temperature around 20°C, sufficient soil moisture at sowing time and moisture stress at tillering stage are the best conditions for the disease development. Under these conditions, loss caused by this disease is more.

Nematode Survival and Spread : The nematode causing molya disease survives in soil in

(contd. on page 32)

Soil Health and Nutrient Management

✍ **Narender, Abir Dey[1] and Manoj Kumar Sharma**
Department of Soil Science
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

At present, soil health issues pose a serious threat to sustained agricultural production and farm profit. In past few decades, public interest in soil health increased tremendously due to enhanced recognition of the fragility of natural resources, continued deterioration in soil health and ever increasing population pressure on finite land resources made it imperative to enhance crop productivity per unit area. imbalanced use of fertilizers and low nutrient use efficiencies further aggravated the problems. Soil health is presented as an integrative property that reflects the capacity of soil to respond to agricultural intervention, so that it continues to support both the agricultural production and the provision of other eco-system services. The major challenge within sustainable soil management is to conserve eco-system service delivery while optimizing agricultural yields. Non-judicious fertilizer use is the prime cause for widespread soil fertility depletion. The problem is more acute in agriculturally advanced regions, wherein annual nutrient removal under intensive cropping often far exceeds replenishments. National Commission on Farmers in its report, recognized soil health enhancement as a key to raising farm productivity and farmers' income. This calls for development of efficient soil management strategies including selection of suitable crop rotations, development of novel fertilizer products, enhancing nutrient use efficiencies, balanced and integrated plant nutrient supply, recycling of crop residues, improved tillage practices, use of low grade P and K minerals. It is envisaged that development of such strategies will not only help in sustaining higher crop productivity, but also improving soil health and environmental quality. The present article overviews the significance of different crop/nutrient management practices in improving soil physical, chemical and biological health, nutrient use efficiency and crop productivity.

Site-specific nutrient management : Site-specific nutrient management aims to increase profit through high yield, high efficiency of fertilizer use and also provides a locally-adapted best nutrient management practice tailored to the field and season-specific needs for a crop. High productivity goals (*i.e.* up to 80% of the genetic yield potential of a variety) could be attained following SSNM. Crop growth models (e.g. DSSAT and Info Crop) could be used for assessing the yield potential of a variety, whereas Quantitative Evaluation of Fertility of Tropical Soils (QUEFTS) is frequently deployed to relate crop yields with plant nutrient content and soil fertility variations. Indigenous nutrient supplies are calculated with the help of nutrient-omission plots. Information on yield targets, indigenous nutrient supply and internal efficiencies of nutrients is used to develop site-specific fertilizer prescriptions. Studies revealed superiority of SSNM over farmers' fertilizer practice (FFP) in different crops in terms of yield gain and improvement in nutrient use efficiency.

[1]Division of Soil Science and Agricultural Chemistry, ICAR-Indian Agricultural Research Institute, New Delhi (India)

Integrated nutrient management : Integrated nutrient management or better termed as integrated plant nutrient supply system involves monitoring all the pathways of plant nutrient supply in crops and cropping systems and call for a judicious combination of fertilizers, organic manures and bio-fertilizers. This approach is not new to India. In the pre-green revolution era, almost all the nutrient needs were met through organic sources and the use of fertilizers were not so popular. The advantages of INM can be broadly enumerated as : (i) restoration and sustenance of soil fertility and crop productivity, (ii) prevention of secondary and micro-nutrient deficiencies, (iii) economizing fertiliser use and improvement in nutrient use-efficiency and (iv) favourable effect on the physical, chemical and biological health of soils. fertilizers, bulky organic manures (FYM and composts), green manures, legumes, crop residues, industrial wastes and by-products, sewage-sludge and bio-fertilizers are main ingredients of INM.

Fertilizers : Fertilizers will remain most important ingredient of INM in order to meet the nutrient demand of high yielding intensive production system. Fertilizer consumption is not only inadequate but also unbalanced and skewed towards N and P in most of the Indian states. Whereas, organics and biofertilizers are expected to bridge a part of this gap, efficient use of fertilizers needs greater emphasis. Efficient fertilizer N management involving nitrification inhibitors, modified urea materials, and time and method of application have been documented. Real time N management using leaf colour chart (LCC) showed promise in enhancing nitrogen use efficiency (NUE) in rice-wheat systems. These tools need to be validated and used in other cropping systems too.

Organic Manures : Organic manures like FYM and composts have been traditionally important

inputs for maintaining soil fertility and ensuring yield stability. Organic manures are important to enhance the use efficiency of fertilizers and also to serve as alternative source of nutrients. Combined use of organic manure and N fertiliser maintains a continuous N supply, checks losses and, thus, helps in more efficient utilization of applied N. Organic sources of nutrients acts as slow release fertilizer as they synchronize the nutrient demand set by plants, both in time and space, with the supply of nutrients from the labile soil pool and applied nutrient sources. At present, less than half of the manurial potential of livestock is utilized, as a large proportion is lost as fuel and droppings in non-agricultural areas. Even out of the amount used for agricultural production, substantial quantity of nutrients is lost due to improper handling, storage and incorporation in soil. Therefore, there is a huge untapped potential in the form of organic manure application in our country for improving soil health.

Green Manures : Incorporation of green succulent biomass into the soil is termed as green manuring (GM). Before the advent of mineral fertilizers, GM was considered an indispensable management practice. However, with the easy availability of fertilizers and adoption of intensive cropping systems, relatively less emphasis was laid on green manuring. In recent years, however, there has been revival of interest in this practice. Green manuring with legumes improves soil N due to fixation of atmospheric N. The decomposing green manure has a solubilizing effect on N, P, K and micronutrients in the soil. Besides, reducing leaching and gaseous losses of N, GM also improves the physical, chemical and biological properties of soil. Sunhemp (*Crotolaria juncea*) and *dhaincha* (*Sesbania aculeata*) are the most common GM crops, although *Sesbania rostrata* has the highest atmospheric N_2-fixing potential and it can completely substitute for urea-N in rice cultivation.

Inclusion of Legumes : Legumes are an important ingredient of INM when included in the cropping systems for grain or fodder purposes. Inclusion of legumes in any manner and for any purpose improved the productivity of rice-wheat system and regenerated soil fertility. Evaluation of a number of leguminous crops for meeting N demand of a succeeding non-legume crop, revealed that on average, as much as 50 to 60 kg Nha-1 could be imparted with the inclusion of legumes. Grain yield of cereal crops increased markedly with a legume as preceding crop compared with that when a cereal crop preceded. The effect of preceding crops, rice or legume, was evaluated in wheat on an Inceptisol, wherein the N use efficiency indices *viz.*, AEN and AREN were significantly greater in wheat following a legume (cowpea grain crop) than that following rice.

Crop Residues : Crop residues have several competitive uses and may not always be available as an ingredient of INM, yet in the regions like North-West India, where mechanical harvesting is practiced, a sizeable quantity of residues is left in the field, which can form a part of nutrient supply. Disposal of rice straw in trans and upper Gangetic Plains has emerged as a great problem. In these combine-harvested areas farmers opt to burn the residues *in situ*, losing precious nutrients on one hand and polluting environment on the other. Recycling of these residues back to fields helps to build stable organic matter in the soil, as also to sustain crop yield levels. Stubbles left in the field even in traditional harvesting methods range from 0.5 to 1.5 t ha-1 in case of different crops. When mechanical harvesting is done, this amount is much greater.

Bio-fertilizers: Bio-fetilizers are the products containing living cells of different types of agriculturally beneficial microorganisms. Most bio-fertilizers belong to the categories of N-fixing, P-solubilizing and mobilizing, or plant growth promoting rhizobacteria (PGPR). The N-fixing bio-fertilizers fix atmospheric N into forms that are readily useable by plants. These include rhizobium, azospirillum, azotobacter, blue green algae (BGA) and azolla, while rhizobium requires symbiotic association with the root nodules of legumes to fix N, others can do so independently. A group of bacteria that enhance the growth of plant through N fixation, P solubilization or production of plant growth promoting metabolites are known as PGPR. Many PGPR strains have a potential to be used as microbial inoculants to enhance crop productivity. Biofertilizers containing efficient microbial strains when used properly can help curtailing a part of fertilizer N requirement of crops. Whereas, legume-rhizobium symbiosis can meet more than 80% of the N demand of legumes, azotobacter and azospirillum inoculants usually contribute 20-25 kg N/ha, respectively under field conditions. On the other hand, average N fixation through BGA and azolla is estimated at 25-30 kg N/ha and 30-40 kg N/ha, respectively.

Soil-test Based Nutrient Application : Soil testing provides a sound information about the suitability, fertility and productivity of the soil. This enables the farmers to make the most profitable use of some of the costly inputs in farming.

However, lack of information among the farmers about soil testing and their importance in management of resources necessitates that the work of soil testing should be taken extensively. Soil testing is a useful tool for making fertilizer recommendations for various crops and cropping sequences as well as reclamation of problem soils. Thus, the major objective of soil testing to identify the type of soil related problem like salinity, alkalinity, and acidity and to suggest appropriate reclamation/ amelioration measures and to evaluate the fertility status in terms of available nutrients for making soil test based fertilizer recommendation.

The conclusions arising from this article is derived from the premise that soil is the site of a vital range of eco-system functions which provides humans with a range of essential services. In natural eco-systems, these functions and services are driven by the energy generated by carbon transformations carried out by the soil biological community acting in a highly interactive and integrated fashion. There is concern that agricultural production in developing countries will cause environmental threats in the future, as production will have to increase to satisfy the growing demand for food. Sustainable management of soil health requires the setting of criteria for acceptable levels of soil-based eco-system functions and in particular the balance between the food production functions and others supporting soil conservation, water flow and quality, crop, livestock and human health control, and greenhouse gas emissions. The established principles for establishing and maintaining soil fertility are familiar. These include inputs of organic matter to meet demand for carbon and energy supply to the soil biota, balanced with the nutrient demand of the crops and the development of integrated (i.e. organic plus inorganic) nutrient management systems where inorganic fertilizers are used in precise dosage in combination with equally carefully designed practices of organic matter management that conserve nutrients and levels of soil organic matter.

(Agroforestry .....from page 29)

Advantages of Agro-forestry :

i. Increase in farm income due to improved and sustained productivity.
ii. Increment in output of fuel wood, food, fodder, fiber and timber.
iii. Reduction in incidence of total crop failure.
iv. Control run off and soil erosion.
v. Check the development of soil toxicities.
vi. Reduce insect pests and associated diseases.
vii. Nitrogen fixing trees and decomposition of litter fall improve soil fertility.
viii. Improved the rural living standards from sustained employment and higher farm income.
ix. Moderates microclimate, utilize waste and degraded land and improve environment.
x. Improvement in nutrition and health due to increased quality and diversity of food outputs.

The selection of the tree species and management practices should be governed by the cropping system prevalent in the region. The tree species for the agro-forestry land use system should have the characteristics of adaptability to local agro-climatic condition, fast growth short rotation, multiple use, cropping ability, higher demand and better value for the produce, ability to improve the soil conditions and easy management. Khejri (*Prosopis cineraria*) and Rohera (*Tecomella undulate*) are suitable trees for agro-forestry in dry areas of Haryana, Rajasthan and Punjab, whereas Poplar (*Populus deltoids*), Safeda (*Eucalyptus tereticornis*), Shisham (*Dalbergia sissoo*), etc. are suitable trees in the irrigated areas of Haryana, Rajasthan and Punjab.

(Molya .....from page 29)

the form of cysts. At the time of crop sowing, nematode larvae come out of the cysts and infect plant roots.

The cysts (dead females containing eggs) are hard structures which protect the eggs from adverse conditions. These cysts are carried from one place to another chiefly by dust storms, water and farm implements where they increase in number if susceptible host is grown continuously.

Control : Following control measures are suggested for the control of this nematode disease :

1. Do not grow wheat and barley continuously in molya infested fields. Follow two year's rotation with non-host crops like mustard, gram, carrot, methi, etc.
2. Plough the infested fields during May-June, 2-3 times at an interval of 10-15 days to expose the nematodes to sun.
3. Complete the sowing of wheat in first fortnight of November.
4. Treat the seed with HT 54 strain of Azotobacter @ 50 ml per 10 kg seed.
5. Grow resistant varieties of barley *viz.,* BH 75 and BH 393 and wheat Raj MR1.
6. In case of heavy and uniform nematode infestation, apply carbofuran (Furadan 3 G) @ 13 kg per acre at sowing time.